साम्राज्य का वैभव

[५ मौलिक कहानियाँ और १ एकांकी]

लेखक :

रांगेय राघव

सूची

अभिमान

(१)

कॉलेज से जो सड़क पूरब की ओर इठलाकर, पश्चिम की तरफ़ बेजकती हुई, घरों की आड़ से निकल, लम्बे-लम्बे पेड़ों की छाया में एकदम अपना आँचल खोल देती है, वहीं कुछ दूर चलने पर स्टेशन की ओर मुँह किये छोटी-सी क़ब्र के सामने एक बस्ती है। छोटे-छोटे झोंपड़े सड़क की ओर अपने छोटे-छोटे दरवाज़ों में से भीतर का अँधेरा और घिचर-पिचर संसार लिये हुए उदासी दिखलाते रहते हैं। आदमी उनमें सीधा नहीं घुस सकता। घरों की बनावट फूस की छाजन से एक गन्दे शरीर पर अनेक फोड़ों-सी मालूम देती है। सामने ही बाग़-बगीचे से घिरी एक दुमंज़िली इमारत है, जिसमें कोई डॉक्टर बरसों से अपनी डॉक्टरी की गाड़ी एकबारगी ढकेलकर चला देने के प्रयत्न में सुबह-शाम शायद अपनी झप वॉयलिन बजाकर बहा देने में लगा रहता है। बगल से सड़क एकदम ऊँची होती चली गई है। और उसके किनारे एक ताल है जो गर्मियों में बिलकुल सूख जाता है। ज़मीन चटख जाती है। बरसात में जब उसमें लबालब पानी भरकर झोंपड़ियों के दरवाज़ों तक कीचड़ कर देता है, संध्या का डूबता सूरज उसकी काली चिकनाहट पर कुछ झेंपता-झेंपता-सा झिलमिलाकर सड़क की दूसरी तरफ़ डूब जाता है और झोंपड़ियों में रहनेवाले आदत पड़ जाने के बावजूद फिसलने से बाज़ नहीं आते।

धूँआ सरेशाम झोंपड़ियों से उठता, बिलमाता, हवा में काँप उठता है। दूर से देखने पर लगता है जैसे बहुत-से मलवे के ढेर में आग लग गई हो और उसका धूँआ रह-रहकर बाहर आ रहा हो। और उसके बाद अँधेरा छाने पर किसी के घर में दिया नहीं जलता, किसी के झोंपड़े में रोशनी का तकल्लुफ़ नहीं होता, सब चुपचाप जागते, सोते पड़े

रहते हैं और एक अजीब सन्नाटा, एक सनसनाती नीरवता दूर-दूर तक अँधेरे से टकराती रहती है। कभी-कभी किसी बेसुरे रोनेवाले बच्चे की दहशत-भरी आवाज़ उस ख़ामोशी से लड़ती है; मगर स्टेशन से आती रेलों की सीटियाँ गूँजकर उसे डुबा ही नहीं देतीं; बल्कि फिर से उस भयानक चुप्पी को उघाड़ देती हैं जैसे मेहतर नालियों की काली कीचड़ की भयंकर सड़ान फेंककर गाड़ियों में चले जाते हैं।

दिन और रात, सुबह और शाम रेल के ख़ाली डिब्बों-से वे आदमी जो सदा इन्तज़ार करते हैं कि किसी तरह भर जायें, किसी तरह उनका भी तो कोई मोल लगे, अपना जीवन बिताये जा रहे हैं। बिजली के लट्टों पर अनेक तार आकर मिलते हैं, उन पर अनेक पक्षी बैठते हैं, मगर इधर चुंगी ने कोई बिजली का लटटू नहीं लगवाया है, शायद यह सोचकर कि यहाँ के रहनेवालों की आँखें उस तीव्र प्रकाश को सह ही न पायेंगी। जब कभी आसमान में चाँद निकलता है, चाँदनी ताल के कालेपन पर पारे की तरह लहराती है, झोंपड़ों पर मटमैली झिलमिलाहट काँपा करती है; किन्तु भिखमंगे कभी उधर दृष्टि नहीं डालते, या स्पष्ट शब्दों में वह उसका सौंदर्य समझ नहीं पाते।

और धूल के गुबार उठते ही रहते हैं, दाँतों में किरकिराते हैं, क्योंकि सड़क पक्की नहीं है, वह जो भिखमंगों की बस्ती है।

(२)

आनन्दी ने काँछ खोंसकर जल्दी से कत्थई-सी साड़ी का पल्ला ओढ़ लिया और रोते हुए बच्चे पर बरसने लगी। बच्चा क्योंकि बच्चा था, रोता रहा। आनन्दी चिल्लाती रही और दोनों का हंगामा झोंपड़ी में घुटने लगा।

संध्या का नीरव दबा देनेवाला वातावरण आकाश में तड़प रहा था। चिड़ियाँ घर लौट रही थीं। बूढ़ी चंपा ताल के किनारे बैठी हुकिया गुड़गुड़ा रही थी। वह धूआँ छोड़ने से पहले बड़बड़ाती थी और धूआँ घुटकर घुमड़ता था, खाँसी आती थी, वह जो बुढ़ापा पेट में से खींच-कर लाता है। आँखों में से पानी निकल आता था। किन्तु वह फिर

रुककर दम मारती थी, फिर खाँसती थी, खखारती थी और फिर बड़बड़ाती थी...

बालक का रोना उसके कानों में चुभने लगा। वह बड़बड़ाने लगी—मरा, फिर कैं कैं, कैं कैं करने लगा। न जीने की फुर्सत, न मरने का चैन, वही री-री, वही री-री...

हुकिया की गुड़गुड़ ने बाकी की बड़बड़ाहट उसके कलेजे के भीतर एक खाँसी में परिणत कर दी। बालक के पिटने का स्वर उसके रोने से भी अधिक बजने लगा। तब लाचार होकर बुढ़िया उठी और झोंपड़े के दरवाजे पर झुककर झाँकने लगी। भीतर आनन्दी बैठी-बैठी अँगिया पहन रही थी और खरामा-खरामा गुरगुराती मौक़े-मौक़े से अपनी राय में बहुत बदतमीज लड़के को इनाम देती जा रही थी। उसे रह-रहकर झुँझलाहट आ रही थी।

'मरा क्यों नहीं, मरे, सूअर, एक बार में जान तो बचे। नित-नित का बवेला तो बंद हो पापी! मगर तू तो मेरा खून पीने जनमा है। तू क्या आसानी से मरेगा जो...'

चँपा को फिर लाचार होकर कहना पड़ा—आनन्दी, तेरा लाल है जो; जैसी गुठली वैसा आम। बिनौले धुनके सूत नहीं निकलता रानी...

और आनन्दी का सारा क्रोध किचकिचाकर बुढ़िया पर हुड़कने लगा। हाथों के शस्त्रों से बच्चे को सम्भालकर मुँह से उसने बुढ़िया से लोहा लेने की ठान ली। कुछ देर दोनों गुर्राती रहीं और बुढ़िया चिल्लाने लगी—हाय हाय, देखो इसे, दिन-भर लाड़ला ले-ले डोली हूँ, सौगन्ध है जो कभी इसे न खिलाकर खाया हो मैंने, मगर माई है कि रानी लच्छमी बाई ..

और आनन्दी कहती रही—मेरे करम ही फूटे हैं, मेरी तरफ़ न देखा तुमने भगवान्, दिन-दिन-भर मील में हाड़तोड़ काम करती हूँ; तीन मील जाती हूँ, तीन मील आती हूँ, मगर यह मौत से भी भीसन रावन नहीं छोड़ता मुझे। क्या करूँ मेरे भगवान्...

और वह रोने लगी। बूढ़ी अपने एक नेत्र से देखती रही और फिर

फूलेवाली आँख को आधा मींचकर गाल बजाकर चीखने लगी—हाय-हाय रे, कोई देखियो, ऐसा कलयुग आ गया है, तेरी राँड़ महतारी होती तो न सहेजके रखती तेरा सपूत खिलौना, मेरी छाती का सूखा दूध, न रहा अपना, नहीं तुझ-सी बगीची में भरती अपना पानी...

और फिर सूझती-बेसूझती आँखों से किनारों पर जमी पीली कीचड़ में सनता पानी टपकने लगा।

इसी समय फटी कमीज़ और ऊँची धोती पहने रग्घू ने झुककर झोंपड़ी में प्रवेश किया। चंपा चुपचाप लेट गई और वहाँ जा बैठी जहाँ सड़क पर बस्ती के बच्चे धूल में खेल रहे थे, हँस रहे थे। बच्चे उसे देखकर अजीब-अजीब नामों से पुकारने लगे और बुढ़िया फिर बड़-बड़ाने लगी।

रग्घू थका हुआ था। उसने एक बार आनन्दी को देखा, फिर बालक को, और वह चुपचाप खड़ा रहा। कुछ देर आनन्दी चिनचिनाती रही और रग्घू ने बालक को गोद में उठाकर झोंपड़ी के बाहर धूल में रखकर कहा—खेलो बेटा! बालक स्नेह पाकर भूल गया और घुटनों के बल सरकता उधर ही चल पड़ा जिधर चंपा बैठी थी।

आनन्दी फट पड़ी—वह मेरा बच्चा है!

रग्घू दिल्लगीबाज़ भी था। बोला—और मेरा नहीं है?

आनन्दी को रोकते-रोकते भी हँसी आ गई। वह अब उसके पास आ गई। रग्घू ज़मीन पर बिछे चिथड़ों पर लेट गया और आनन्दी उसके सहारे अधलेटी-सी पैर फैलाकर बैठ गई। दोनों एक दूसरे को देखते रहे। आनन्दी ने कहा—दिन-दिन उसे लिये घमती है, और भीख पाने के लिए उसे दिन-भर चिकोटी काटकर रुलाती है कि 'भूखा है मेरा बच्चा, भूखा है मेरा बच्चा।' और उसे वही आदत पड़ गई है। मरी, अपना होता तो क्या ऐसे छिन-छिन हाथ उठता। और कहती है, इसके माँ-बाप मर चुके हैं भला...

रग्घ ठठाकर हँस पड़ा।

'अरी, यही तो तरकीबें हैं। न तो जाकर कहेगी, इसकी माँ तेलमील

में काम करती है, बाप कारखाने में मजूरी करता है, मैं इसे चिकोटी काटकर रुलाती हूँ...'

और फिर वह बड़ी ज़ोर से हँस पड़ा। आनन्दी ने हतोत्साह होकर वह तीर निकाला जिसे भिखारिन से लेकर रानी तक अपना अमोघ शस्त्र समझती है। उसने आँखों में आँख डालकर कहा—मगर बच्चा मेरा है...ऐसे तो वह मर जायेगा...

रग्घू चौंककर बोला—'मर जायेगा।?' और जैसे उस पर कोई अनजानता दुःख छा गया हो, कह उठा—आनन्दी! तू कैसी बातें कर रही है? इधर तेरा क्या दिमाग़ कुछ ठीक नहीं रहा?

आनंदी चुपचाप निगाह नीची किये सुनती रही। रग्घू कहता रहा—मैं नहीं मरा, तू नहीं मरी, जनम से ही तो दोनों देख रहे हैं एक दूसरे को, फिर एक यह अनोखा हो चल बसेगा। तीन-तीन, चार-चार दिन तक कुछ खाने को नहीं मिलता था, अब दो रोटी मिल जाती है तो...

आनंदी काटकर बोली—तब भीख माँगते थे, अब मेहनत-मजूरी करते हैं। तब दूसरों की दया पर पलते थे, अब काम करते हैं। घर में रोटी रखकर कोई बच्चे को भूखा नहीं मारता। मैं अपने बच्चे को ऐसे नहीं ले जाने दूँगी।

रग्घू पसोपेश में पड़ गया। उसने पूछा—तो चंपा का क्या होगा? बूढ़ी भूखी न मर जायगी? बच्चे पर दया करके लोग इस मँहगाई में भी कुछ-न-कुछ दे ही देते हैं...

आनंदी एकदम बोल पड़ी—आलू के कारखाने में क्यों नहीं काम करते? छः आने रोजीना मिलते हैं, छः आने। अब तो बस आटा मिलता है, बासी रोटियाँ मिलती हैं...

और उसके नयनों में चित्र घूम गये। एक दिन ब्याह के बाद वह भीख माँगने गई थी। सुनार के बेटे ने मुस्कराकर कहा था—अभी नहीं, संझा को अइयो। और सोने के लालच में जब वह शाम को गई थी...

उसने कभी किसी से कुछ कहा नहीं था, रग्घू से भी नहीं। किन्तु उसके बाद ही उसने 'मील' में नौकरी कर ली, जहाँ वह बस्ती की पैंतीस

औरतों के साथ टोली बनाकर जाती थी, टोली बनाकर लौटती थी। लोग उनकी एक-सी लाँगदार कत्थई साड़ी, उनके भारी पोले कड़े और काम के वज़न से डगमगाई लँगड़ी चाल को देखकर उन पर हँसते थे, किन्तु वे आपस में हँसती थीं, बाबुओं को दूर ही दूर से ललचाई आँखों से देखती थीं, बबुआइनों पर डाह करती थीं, काली-काली गंदी बदबूदार...

चंपा बालक को उठाकर कुढ़ती फिर झोंपड़े की तरफ़ आ रही थी। आनंदी ज़ोर से कह उठी—चंपाबाई को चाट लग गई है बज़ार की, कारख़ाने में जायेगी ही क्यों वह...जाय तो मिलें छः आने रोजीना, छः छाने !...

चंपा ने दरवाज़े पर ही से सुना और वह कर्कश स्वर से चिल्ला उठी—चाट लग गई है मुझे और मील के मरदों में भी तो मैं ही जाती हूँ। मेरे तो बाप ने यही किया, माँ ने यही किया, मैं भी यही करती रही हूँ और करती रहूँगी, मैं कोई बैल नहीं, गधा नहीं, सदा की रीति चली आई है। बस्ती में अब नहीं वैसे आदमी जैसे पहले थे। दो पैसा क्या हाथ में आ गया है, घमंड करने चली है ठुमको !

'गधा नहीं, तो कुत्ता बनकर रहना, क्या अच्छी बात कही है, मेरी सास ने।' आनन्दी क्रोध से फुंकार उठी।

'तो बेटी, हम कुत्ता हैं, तो तेरे बाप भी कुत्ता थे, और तेरी महतारी भी कुतिया थी...'

आनन्दी 'बाप कुत्ता थे' सुनकर तो चुप रही। मगर माँ का कुतिया होना सुनकर वह एकदम हाथ-पैर चलाकर दहाड़ने लगी—राँड़ बजार-बजार डोले है। भगवान् ने एक बजार तो बैठा दिया है पापिन, दूसरे से भी चैन नहीं लेने देती है।

और हो गई...

रग्घू चुपचाप सुनता रहा।

(३)

दूसरे दिन सुबह आदत के मुताबिक़ आनन्दी ने ताल पर हाथ-मुँह

धोये, उसी पानी से कुल्ला किया, उसी में थूका और वही घड़े में भर झोंपड़े में रखकर रोटियाँ बाँध, टोली में जा मिली और सब लगे अँधेरे ही मील की ओर चल पड़ीं। रग्घू उठा और काम-धाम से फारिग़ होकर कारख़ाने की ओर चल दिया और अन्त में चम्पा ने ही बालक को गोद में लिया और भीख माँगने निकल पड़ी।

करीब दो बजे जब चम्पाबाई भीख के आटे की रोटियाँ थापकर चूल्हे पर बैठी थी, बूढ़ा बैरागी रोज़ की तरह उसके सामने आ बैठा और बात चल पड़ी।

'मामा! एक बात कहूँ?' चम्पा ने अपने सूखे चेहरे को उसकी तरफ़ फिराकर कहा। देखने से लगता था जैसे फूलेवाली आँख से वह ज्यादा देखती थी।

'क्या है? चम्पा!!' बूढ़े ने दो स्वरों में छोटा-सा वाक्य कहा।

'मैं कहूँ, अपने बाप-दादा सदा से क्या करते आये हैं?' उसने बात शुरू की।

'भगवान् की दया पर रहे हैं। और क्या?' बूढ़े ने शंकित-सा उत्तर दिया।

'तो हम किसी के नौकर-मजूर तो नहीं।' बुढ़िया ने चूल्हे में फूँक मारते हुए कहा।

बूढ़ा रोटी खाता हुआ बोला—नहीं, हर्गिज़ नहीं। अपना-अपना काम है। मगर हम किसी के नौकर नहीं हैं। जिसने दिया उसका भला, न दे, कल देगा। बिलकुल न देगा तो परमात्मा उसे ही न देगा। मगर हम किसी के चाकर नहीं हैं। मन करेगा, माँगने जायेंगे, न करेगा, अपने घर रहेंगे।

एक घूँट पानी पिया और फिर रोटी चबाने लगा। बैरागी के बाल सफ़ेद थे। उसकी मूँछें सफ़ेद थीं, दाढ़ी सफ़ेद थी, भौं भी सफ़ेद थी। इसका बुढ़ापा एक शस्त्र था। बुड्ढे का भीख माँगने का ढंग इतना लाजवाब था कि बस्ती के और लोग जब ख़ाली लौटते थे, बूढ़ा तब भी कुछ-न-कुछ लेकर ही लौटता था। बूढ़े ने कभी अपने लिए बचाकर

कुछ नहीं रखा। और बस्ती के सब लोग इसी से उसकी इज्जत करते थे।

बस्ती में लौट आने पर किसी को ध्यान नहीं रहता था कि वे भिखारी थे और भीख ही पर उनका जीवन चलता था।

चम्पा के मन को सन्तोष हुआ। उसने कहा—मामा! बस्ती में पहले क्या नहीं हुआ। ब्याह नहीं हुआ कि बच्चे नहीं हुए? बताओ भला कौन यहाँ अकेला रहा। बीरा का बेटा अन्धा हो गया तो क्या हमने छोड़ा था? हमने अकेले सुख कब लूटे? चन्दा की बहिनियाँ थीं कि नहीं मँगनी, नहीं करा दिया था दोनों का ब्याह? लँगड़ी थी तो क्या? मामा! जब अन्धा और लँगड़ी जाड़े के दिनों सुबह की ठण्ड में नंगे निकलते थे तो किसने उन्हें कपड़ा नहीं दिया? बस्ती के सब लोगों ने कपड़े पहने, यहाँ तक कि बेचने पड़े थे, इतने हो गये थे, है कहीं वह भाईचारा आज? है कोई जो बस्ती के लिए उस कड़कती ठण्ड में जाकर गा-गाकर अपने आपके तन को ऐसा दुःख दे?

बूढ़े के नयनों में तरलता छा गई। उसने कहा—चम्पा! मैंने ही तो मँगनी को गिड़गिड़ाने का तरीक़ा सिखाया था, इसी ताल पर बैठकर। बीरा का बेटा क्या कुछ जानता था? उसे वह चिल्ला-चिल्लाकर दुहाई देना किसने सिखाया था? मैंने। वह दिन नहीं रहे चम्पा, अब वह दिन कहाँ रहे?

चम्पा कहने लगी—मेरे सत्तरह हुए मामा, सत्तरह। मगर अपना एक भी नहीं बचा, मगर भीख माँगने जाते वक्त मैंने कभी अपने बच्चों को किसी के भी साथ जाने से रोका?

बूढ़े ने अधीर स्वर में कहा—पहले हम एक दूसरे पर भरोसा करते थे, अब तो नहीं करते? मैंने तो पहले कहा था कि लड़कों को नौकरी करने भेजा नहीं कि बस्ती में फिर सुख नहीं बसेगा। और तुमने देख ही लिया।

बूढ़ा रोटी खाता रहा हाथ पर धरकर और चम्पा सेंकती रही वह मोटी-मोटी रोटियाँ।

(४)

चम्पा की हालत दिन पर दिन गिरती गई। खेरीज मिलना कठिन हो गया। वह लोगों से माँगती, और लोग हँसकर जेब ढूँढ़ते और कहते—पैसा कहाँ है? खेरीज मिलती है कहीं? कोई-कोई मजाकिया नोट दिखाकर कहता—माना कि मँहगाई की वजह से एक पैसे की बजाय दो पैसे पाने का तेरा हक़ हो गया है, क्योंकि मँहगाई भत्ता सभी को मिल रहा है, लेकिन साढ़े पन्द्रह आने दे जा, नोट ले जा। बूढ़ी देखती। कुछ भी नहीं समझ पाती। उसने इन बातों को कभी अपना नहीं समझा; क्योंकि उसकी बस्ती में पैसेवाले का तो अपमान करना, ठोकर मारना, अधिकार समझा जाता था। जैसे रियासतों के राजा अँगरेज़ों के सामने नाक रगड़कर भी आपस के लोगों में रोब जमाने से बाज़ नहीं आते। उसे यदि कोई बात नहीं आती थी तो यही कि लोग उससे मज़ाक करते थे। और मज़ाक भी ऐसे जो केवल शब्द बनकर नहीं रह जाते, उसको एक ठोस नुकसान ही उसका फल दिखाई देता है।

घर-घर की औरतें काटने को दौड़तीं और काँय-काँय करतीं—धरा है तेरे लिए यहाँ। मिलता है कहीं गेहूँ? और औरतों की यह बात फ़ौरन उसके दिमाग़ में ठक करके चोट करती; किन्तु आदत के मुताबिक वह बालक को छज्जे पर बैठाकर रोने लगती—ऐ माई, तेरे घर में सोना बरसे, ऐ माई, तेरे लाल गद्दी पै चढ़ें, देख मेरा भूखा बच्चा...

और बच्चा यद्यपि ढेर का ढेर खाता था, कभी उसकी हड्डी पर मांस नहीं चढ़ा। मक्खियाँ उसके गन्दे मुँह पर भिनभिनाती रहतीं और तभी बुढ़िया इशारे से उसे चिकोटी काटती वह मेंऽऽऽ करके रो देता। उस समय उसको देखकर सबके दिल में दया हो आती, कोई कुछ दे भी देता, वरना अकसर वही रूखा जवाब उसको निराश कर देता और एक अज्ञात भय उसके हृदय में हाहाकार कर उठता। वह बालक को एकदम उठा लेती और प्यार से पुचकारती—मेरे लाल, मेरे राजा, तुझे पूरी दूँगी, माई रोटी देंगी और बालक यह बढ़िया-बढ़िया नाम जिसका

उन्हीं चीज़ों से संबंध उसने डाक्टर की शादी की मुफ़्त दावत में हाल में जानकर याद कर लिया था, सुनकर चुप हो जाता, बुढ़िया के फूलेवाले नेत्र की भीषण निःस्तब्धता पर निगाह डालकर एक-आध बार नाक से बहते पानी को ऊपर खींचता और फिर उसके कंधे पर सिर टेक देता।

लाचार होकर बुढ़िया नाज की दुकानों पर जाने लगी। वहाँ वह घंटों बैठी रहती। क्योंकि उसकी कोई आमदनी नहीं थी, उसे कोई राशनकारड नहीं मिला था। अनेक औरतें झुंड के झुंड बनाकर बैठतीं, लड़तीं, जवान औरतें आपस में मज़ाक करतीं और मर्दों की सिरफोड़ भीड़ में एक-आध ग़लती से घुसी औरत की चर्चा करतीं कि कैसे उसे गुंडों ने भिच्ची में ले लिया, छाती पर हाथ डाल दिया, औरत ने गाली दी, बड़े झगड़े में छोटा झगड़ा खड़ा हो गया...

बनिया सिविलगार्डों से कुछ इशारे करता। वारडन चिल्लाते—'हो गया सब। आज का माल बँट गया,' बनिया आख़िरी बार डंडी मारकर कहता—चलो, उठाओ, बढ़ो-बढ़ो...

दूना शोर मचता, कभी-कभी मार-पीट हो जाती। बुढ़िया देखती रहती। वह कभी आनन्दी का—दूसरों का—बच्चा लेकर उस भीड़ में नहीं घुसती। एक दिन उसने देखा था, एक जवान औरत उस भीड़ में ऐसी कुचल गई थी कि उसका बच्चा पेट के भीतर ही मर गया था...

दूसरी तरफ आनन्दी का सितारा धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहा था। जब 'मील' में फूलकुमारी और गुलाब आपस में बतरातीं तो यही शिकायत करतीं कि पहले मँहगाई न थी, न सही, मगर चीज़ें कितनी सस्ती थीं। पहले दस सेर, ग्यारह सेर का गेहूँ था, १६ का चना और अब ढाई सेर का गेहूँ और साढ़े चार सेर का चना! राम-राम! कोई हद है? अब तो गेहूँ के दाम सोने के दाम हैं।

गुलाब जवानी में झुर्री पड़े अपने गालों पर हाथ रखकर जवाब देती—मेरी सौत, मिठाई के दाम मिट्टी बिक रही है भौजी, मिठाई के दाम।

आनंदी सुनती, मन में अचरज करती, ऊपर सिर हिलाती। पहले

के जीवन में न मिठाई का नाम उठता था, न सोने का। अब कम-से-कम नाम तो आया। हाथ-पैर में गहने हैं 'डरी' के, 'राँग' के, दूर से जरूर चाँदी के लगते होंगे, और हर स्त्री के इस प्राकृतिक विचार से कि वह 'बुरी नहीं है', बल्कि 'अच्छी है' वह भी मन-ही-मन सोचती और चाँदी में क्या बात है ऐसी! बहन-बदन का भी तो फरक होता है कुछ।

'मील' में गेहूँ सस्ता मिलने लगा। आनंदी की बाँछें खिल-गईं। उस दिन बस्ती की सब औरतों ने गीत गाया था। चाँदनी में ताल के किनारे खूब अच्छी रही थी। हँसियों से, किलकारियों से सारे जवान पुलक उठे थे। इधर कुछ दिन से हुकम हुआ था कि मिट्टी का तेल भी मिल जाया करेगा। आनंदी ने इस विचार पर कोई प्रसन्नता प्रकट नहीं की। क्या होगा मिट्टी के तेल का! कौन रोज-रोज वह ब्या रही है कि जच्चा को दिया चाहिए ही चाहिए। सरे साँझ चूल्हा-चौका किया, पौढ़ रहे। एक बात पर उसे अचरज हुआ। उससे कहा गया कि घर में कौन चीज़ कहाँ रखी है, उसे क्या अँधेरे में कोई ढूँढ़ सकता है? उसे अपनी झोंपड़ी की एक-एक चीज याद थी। कोने में मटके हैं, एक तरफ टूटी, नहीं साबूत भी, नहीं जैसी एक चिथड़ों से लदी खाट है। उस पर उसका मरद सोता है। वही रग्घू जो तीन बार हँसता है तो एक बार बात करता है और नीचे एक फटी चटाई पर जो चिथड़े पड़े हैं, उन पर कंबल ओढ़कर वह स्वयं सोती है अपना कलमुँहा लेकर। उसे समझ नहीं पड़ता कि सुबह मील जाते वक्त उसकी बस्ती की लुगाइयाँ और वह स्वयं जब काँख में हाथ दाबे सुरसुराती तेज-तेज लँगड़ाती ठुलकी चाल से बिना कपड़े लादे पहुँच सकती हैं तो इतने कपड़ों का लोग करते क्या हैं? वैसे देखने को जरूर अच्छे लगते हैं। मगर मिट्टी का तेल मिलने पर फूलकुमारी और गुलाब ने जो हर्ष दिखाया था, आनंदी को तनिक भी न हुआ और वह चुपचाप सुनती रही। कौन नहीं जानता कि लड़ाई हो रही है। कभी-कभी फूलकुमारी आकर बहुत बातें बताती है कि अब जर्मन हारे चाहे जीते मगर लड़ाई बंद नहीं होगी,

तो उसने मुस्करा कर कहा—तो क्या बंद भी होगी? और अनेक स्त्रियों ने ठहाका लगाया था। मेट चिल्लाकर बोला था—तुम्हारा बाप है न जर्मन! खबरदार जो यहाँ चुहल की। काम नहीं किया जाता, ठूँस-ठूँस के खाना भीतर कर लेना आता है...और वह सब काम में लग गई थीं। लड़ाई गोया ख़त्म हो गई थी और हो रही है तो हमसे क्या मतलब...

(५)

रग्घू मतवाले की बान थी कि पहले हँस देना, चाहे खुशी हुई हो चाहे ग़मी, और बाद में चुप होकर समझने की कोशिश करना। समझ में आ गई तो ठीक और चुप रहना और न आई समझ में तो दो-चार गोते खाना और सिर हिलाकर फिर बड़े खुश। उसका बाप भी ऐसा ही कहा जाता था। जब रग्घू ने पुश्तैनी पेशा भीख माँगना छोड़कर पहले नौकरी करना शुरू किया तब बस्ती के कुछ लोग नाराज़ हुए थे। तब सामने की दुमंज़िली कोठी में डॉक्टर नहीं थे, वरन् एक तहसीलदार रहते थे। उनके नौकरों के साथ उठते-बैठते बार-बार भिखारियों को गाली खाते देखकर उसने नौकरी करने का निश्चय किया। रग्घू तब सत्रह बरस का था और तहसीलदार साहब की लड़की बाईस साल के लगभग थी। गोरी-गोरी, चिकनी-चिकनी, पढ़ती थी तो रात के दो बजे तक और गाती थी तो झूम-झूमकर, हँसती थी तो रग्घू देखता का देखता रह जाता था। जैसे वह एक परी थी जो रग्घू कभी नहीं छू सकता। वह कूल्हे उचकाकर चलती थी और पीछे से गजब की लगती थी, जैसे रग्घू नहीं जानता वह क्या कहे, वह बहुत अच्छी जरूर थी। उसी ने एक दिन कहा था—हाथ-पर रखकर भीख माँगते हो? शर्म नहीं आती? मेहनत-मजदूरी करके खाओ, आदमी बनो, आदमी! रग्घू ने उसी दिन से भीख माँगना छोड़ दिया और नौकरी की तलाश में लग गया। उसके बाप को लोगों ने समझाया। पहले तो वह कुछ नहीं समझा और बड़ा ख़ुश रहा, जब समझा तो

चुप हो रहा, और अपने ही बाप के इस बेटे ने बाप के ही चरणों पर अनजान में पैर रखा।

रंग के काले, कुछ ऊँचे, दिलदार, हर चीज में दिलचस्पी लेनेवाले इस व्यक्ति को बहुत-सी बातें घेर लेती थीं और उनसे लड़कर रास्ता निकाल ले जाना उसके लिए एक कठिन-सा काम था।

जिस कारखाने में वह काम करता था उससे कुछ ही दूर उत्तर की तरफ सड़क के चौराहे पर दो गौर, फ़ौजी, सिपाही की जगह खड़े दिखाई दिये। उनके चारों तरफ़ एक भीड़ इकट्ठी थी। रग्घू ने पूछा—यह लोग कौन हैं ?

किसी ने कहा—गोरे, मगर किसी ज्यादा समझदार ने कहा—अमरीकन ?

'अमरीकन !' रग्घू हँसे। बोले—यह कौन ?

उत्तर मिला—जैसे अँगरेज विलायत के, वैसे अमरिका के अमरीकन।

रग्घू समझ गया। लिहाजा चुप हो रहा। अमरीकन सिपाही नये आये थे। उन्हें अभी हिन्दुस्तान को हिकारत से देखने को सीखने का समय नहीं मिला था। वह अभी इसी ताज्जुब में थे कि यहाँ तो सड़कों पर चीते और साँप नहीं घूमते। बाबू लोग आपस में देखकर उन्हें मज़ाक करते कि 'अमरीका जाकर क्या कहेंगे ? सात समन्दर पार जाकर भी चौराहे के सिपाही ही हुए। तो यार, यह अमरीका में तो बहुत जबर्दस्त कबाड़िये होंगे।'

'और क्या ?' दूसरे बाबू ने कहा—ऐसे ही मजदूर-वजदूर ये लोग वहाँ के।

रग्घू की दिलचस्पी बढ़ गई थी, यह सुनके कि मजदूरों के ये ठाट भी हो सकते हैं ? उसने आँख फाड़कर देखा। बेहतरीन कपड़े। पीने को सिगरेट और हाथों में चाँदी की घड़ी।

उस दिन-भर उसके दिल में एक अजीब-सी उलझन रही। वह कहता, वाह री लड़ाई ! तूने भी बड़ी-बड़ी रंगत दिखाई और शाम को

जब वह लौटता, सड़क पर धूआँ घटा-सा छा जाता। एक के बाद एक सैकड़ों बड़ी-बड़ी ट्रकें रोशनी की जञ्जीरों से बँधी-सी चली जातीं। रग्घू जब थका-माँदा झोंपड़ी में घुसता, आनन्दी आँख मटकाकर देखती, फड़कती, लजाती और रग्घू कुछ न समझकर भी सब कुछ समझता हुआ-सा कहता—कहो आनन्दी! आज कैसी रही।

आनन्दी ने साड़ी को समेटकर काँछ मारते हुए कहा—आओ, रोटी सेंक लूँ। रग्घू ताल पर जाकर हाथ-मुँह धो आया। साँझ का वक्त था। गायें लौट रही थीं। उनके पैरों से उठी धूल झोपड़ियों पर बरस रही थी और गधों के लोटने से रास्ता बिलकुल धूमिल हो गया था। उसके पीछे वह डूबता सूरज था और झोपड़ियों में से सन्ध्या की रोटी पकने का धूँआ धूल में मिलकर एक दमघोट वातावरण तैयार कर रहा था। ताल पर उजाला था; लेकिन डरा-डरा, काँप रहा था। शायद उसे काले पानी की स्तब्ध पर्त्त पर फिसल जाने का डर था।

आनन्दी और रग्घू खाना खाकर लेट रहे। रग्घू ने खटिया पर कंबल ओढ़ते हुए पूछा—आनन्दी! आज लल्ला कहा गया? चंपा नहीं लौटी?

आनन्दी ने सुना अनसुना करके कहा—मरा, उसी से हिल गया है। आज वहीं सो रहा है जो उसके पास।

'ओह' रग्घू हँसा और आनन्दी को पास खड़ी देखकर उसका हाथ पकड़ उसे खाट पर बिठा लिया और उसे देखकर हँस उठा। आनन्दी अपने मरद के हँसने का मतलब ख़ूब जानती थी। उसने एकाएक कहा—तुम्हारा कारखाना कब तक चलेगा?

'लड़ाई, लड़ाई।'

'और उसके बाद?'

इस बात को रग्घू भी न सोच सका। उसने कहा—मामा कहते थे, पहली लड़ाई के बाद बहुत आदमी बेकार हुए थे, बहुत ग़रीब हो गये थे। पता नहीं क्या होगा?

आनन्दी ने निस्संकोच पूछा—तो कारखाने बन्द हो गये तो सेठ क्या खायेंगे ?

इस प्रश्न को सुनकर रग्घू को पहले तो दिल्लगी सूझी ; मगर उसने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—सेठ अपनी सेठगिरी करेगा। कमाऊ बाप मरे से बेटा भूखा मरता है, कि बेटा मरे से कमाऊ बाप ? सेठ को क्या कमी है ? सेठ मोटर में डोलैगा, उसके द्वार बंदनवार बँधैगी, बन्दूक लिये दरबान रहैगा। यह भी कोई सेठ को अपना जैसा समझ रखा है ?

आनंदी ने सोचते हुए कहा—और हम क्या करेंगे ?

'हम वही करेंगे जो हमारे बाप-दादा ने किया।'

'तो क्या फिर भीख माँगनीं पड़ेगी ?' आनन्दी का हृदया कुम्हला गया। वह काँप उठी।

दोनों देर तक चुप रहे। सूराखों से आती धुँधली रोशनी को किसी ने मिटाकर भीतर स्याह अँधियारा कर दिया था। सहसा रग्घू बोल उठा—आनंदी, जिसने पैदा किया है, वही देता है। आज मजूरी है, कल भीख थी। जीने के लिए तो सभी कुछ करना पड़ेगा। मगर मन नहीं करता कि फिर भीख माँगूँ। तू कहै तो फौज में चला जाऊँ। आज रँगरूटों की भर्ती हो रही थी। कल ही ले, अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा अच्छी तनख्वाह……

आनंदी काँप उठी। उसने उसके मुँह पर हाथ रख दिया और सिसकते स्वर में रिरियाने लगी—

कैसी बात करते हो तुम ? नहीं जाने दूँगी मैं। किसके सहारे ज़ीऊँगी। क्या होगा मेरे लाल का।

रग्घू ठठाकर हँस पड़ा। वह बोला—यह भी खूब रही कि मैं राँड हो जाऊँगी तो तुम क्या रोने आओगे ? अच्छा बाबा, न जाऊँगा। बस ! अंतिम शब्द एक प्रार्थना थी, एक विराम था, एक प्रश्न था, और थी एक सांत्वना। आनन्दी पुलकित हो उठी और रग्घू ने उसे अपना कम्बल ओढ़ा दिया...

रात बहुत छोटी साबित हुई।

(६)

जब दिन के अन्त में अजीब स्वर से गानेवाला रामू और नत्था, शाम को शराब पीकर लड़ने लगे, पूरी की पूरी बस्ती इकट्ठी हो गई। औरतें कर्कश कोलाहल करने लगीं और बूढ़ियों को गालियाँ सुनाने का खासा मौका मिल गया। बच्चे कभी चिल्लाते, कभी एक दूसरे के पीछे दौड़ते, कभी कोई बड़ा लड़का छोटी-सी किसी लड़की को पीटकर उसकी तू-तू. मैं-मैं की नकल उतारता या जाकर किसी बैठे बूढ़े से जा टकराता और फिर मर्दानी वज़नी गालियाँ खाता।

ऐसे मौके बस्ती में बहुत कम उठते, जब सब मिलकर बात करते या शोर करते। जनम होना तो एक मामूली बात थी। हाँ, शादी होने पर ज़रूर एक पिटपिटी दिन-रात बिना मुहूर्त्त का ध्यान किये आपस के ही बच्चे बजा लेते। बाराती आकर सड़क पर सोते और औरतें घरों के दूसरी तरफ़ के खुले में सोतीं। जवान-जवान ब्याहता नये-नये जोश में छिपकर मिलते और आगे चलकर ब्याह का ताँता लगाये रखने की कोशिश में लगे रहते। सड़क पर ही दावत होती। उस दिन पत्तलें बिछतीं और पूरियाँ उतरतीं, और चलते कहते—'देखो सालों को। भीख माँग-माँगकर घी की उतारते हैं। देखा? भला कोई कहे कि कहाँ से आया इतना माल?'

बूढ़े भिखारी सुनते तो हाथ जोड़कर कहते—बाबू, आपकी दया पर चल रही है यह घोड़ी। हमारा अपना क्या है? आपके टुकड़ों पर पलते हैं, जूठन पर...

और वह बस्ती के और लोगों की तरफ़ देखकर मुस्कराता जैसे यह भी उसकी विजय का द्योतक थी कि बाबू भी अचरज में पड़ गये।

नत्था और रामू का यह द्वन्द्व थोड़ी देर के बाद थम गया। दोनों नशे में थे और ललचाई नज़रों से सड़क पर चलती बबुआइनों को ताकते रहे। किसी ने भी इनकी तरफ़ नहीं देखा जैसे वे सड़क के किनारे पड़े पत्थर थे या धूल, और वह जब पलटे तो देखा कि बिंदिया मुस्कराई

थी और आग ले जाते में बिदककर पीछे झाँई मार गई थी। दोनों तय नहीं कर पाये कि वह किस पर लट्टू हुई है और चूँकि शराब के नशे में एक बादशाहत का ज़ोर होता है, वे आपस में भिड़ गये। और जब नशा उतर चला, वे दूर होने लगे। मुँह से तीर चलते तो अब भी थे, मगर छोटे, उतनी दूर न चोट करनेवाले, न उनकी धार ही इतनी तेज़ थी।

इसी बीच रग्घू को हाथ का इशारा करके सामने की कोठी के डॉक्टर ने अपने पास बुलाया। रग्घू सकपकाता-सा उसके सामने जा खड़ा हुआ। डॉक्टर एक सफ़ेद कमीज़, सफ़ेद जरसी और रेहिया रंग का पतलून पहने था। उसकी तुलना में रग्घू ने देखा—वह धूल से भरा था, मैला था, गंदा था और डॉक्टर जैसे जान-जानकर उसकी बदबू पर नाक सिकोड़ रहा था। डॉक्टर असल में एक सीधा-सादा आदमी था और इसी लिए डॉक्टरी चलाना उसके लिए मुश्किल था। कभी-कभी वह बस्तीवालों के बुलाने पर मुफ्त कोई रोगी देख जाता था या अपने घर बुलवाकर देख लेता था और उसकी बीबी, एक ठिंगनी-सी सफ़ेद रंग की औरत, एक रायबहादुर की लड़की थी। उसीकी हिम्मत थी कि घर का काम चलाये जा रही थी और डॉक्टर ही का दिल था कि उससे निभाये चला जा रहा था। डॉक्टर के कहने के पहले नेपथ्य में से ही बोलती उसकी बीबी ने प्रवेश किया और अपनी चुस्त पेशानी को उठाकर रग्घू से कहा—'क्यों जी, तुम्हें मिल में तेल मिलता है?'

स्वर मिठास से भरा था, कोयल।

रग्घू ने कहा—जी बीबीजी, मैं तो नहीं जानता, मेरे घर में बता सकेगी, उसे बुला दूँ। और सामने खड़े नन्दू-जैसे ऊधमी लड़के पर निगाह गई। नन्दू दौड़ा-दौड़ा गया और बोला—भाभी! चल जल्दी, तेरे भैया ने बुलाया है।

'मेरे भैया?' वह एकाएक चौंक उठी।

'अरे नहीं, तेरे नहीं, मेरे भैया ने, मगर जल्दी चल। तोतापरी से बात हो रही है आज।'

आनंदी जब आई तो वह हँस रही थी। उसकी गठीली देह इस समय फुर्ती से भरी लगती थी। और जवान औरत चाहे कितनी भी सीधी हो, अगर कोई उसकी ओर देखे, इसका उसे ज्ञान हो जाय तो फ़ौरन उसकी चाल बदल जाती है। दाँत उसके दीखते रहे। वह बीबीजी की तरफ़ खड़ी हुई। बीबीजी साफ़ थीं, धुली-पुँछी थीं, कहीं-कहीं रँगी-पुती थीं। आनन्दी मैली, गन्दी, और इनकी निकटता में उसमें से आती बदबू भी साफ़ हो गई।

बीबीजी ने कहा—तुम मिल में काम करने जाती हो?

आनदी ने हाथ बांधकर कहा—हाँ जी!

'तो देखो!' डॉक्टर ने कहना शुरू किया, मगर वह कह न सका, क्योंकि वह इसे घमंड से भरी बात समझता था, किन्तु इन्हीं कामों को सँभालने के लिए जो औरत थी, वह बोल उठी—'तुम्हें मिट्टी का तेल मिलता है। तुम लोग जलाते नहीं हो। कौन है जो तुम्हारे यहाँ पढ़ाई-लिखाई का काम करे। हमें रात को जरूरत पड़ती है। मिलता नहीं है कहीं और बाजार में, दूकानदार परेशान करते हैं, अब आओ, कल आओ। आजकल नौकरों की अजब तकलीफ है। सब कारखानों में, सी० ओ० डी० में मजदूर हो गये हैं। एक है अपना, उसे कहाँ-कहाँ भेजा जाये। तो तुम ला दिया करोगे मिट्टी का तेल?'

बात मामूली थी। घमण्ड की कोई झलक न थी। जो बात थी वह साफ़ कह दी गई थी। रग्घू ने बुरा नहीं माना, आनंदी के सामने एक नया जरिया खुला। बड़े आदमी हैं, उन्हीं की सब बात है। पढ़ाई है, लिखाई है और अपने अनेक काम हैं।

आनदी को चुप देखकर उस समझदार औरत ने कहा—तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। अरे भाई, इतनी दूर से लाओगी, तो कुछ तो हम यही कोशिश करेंगे कि तुम्हें भी कुछ-न-कुछ फ़ायदा ही हो। एक दूसरे की मदद करने के लिए ही पड़ोस होता है।

आनंदी ने झेंपते हुए स्वीकार कर लिया और बीबीजी ने गर्व से

अपने पति की ओर हिकारत-भरी मुस्कान मारी और फिर आनंदी से मुड़कर कहा—तो कल से लाओगी न ?

आनंदी ने कहा—मगर एक से अपना क्या काम चलेगा बीबीजी ? आप कहें तो हम चार-पाँच जनीं अपना-अपना कारड आपके लिए काम में ले आयें।

'अरे तब तो बहुत ही अच्छा है। इसमें तो घर बैठे हमारा काम चल जायगा। अच्छा तो तय रही। जाओ, कल से ले आना।'

आनंदी जब पैसों के बारे में सोच रही थी, रघू मन-ही-मन डॉक्टर और उसकी बीबी की जोड़ी मिला रहा था। बात खतम हो गई और साथ ही खतम हो गई उनकी वह आशा भी कि चलने से पहले बीबीजी फिर उनसे कुछ बोलेंगी।

झोंपड़े में पहुँचकर आनन्दी ने निर्लज्ज भाव से रघू को कसकर पकड़ लिया और कह उठी—अब तो मेरा बालक मुझे दिला दो। क्या तेल के दाम से चम्पाबाई का भीख माँगना नहीं छुड़ाया जा सकता ? मिल के और मजदूर-मजदूरनियाँ हमें हिकारत की नजर से देखते हैं, कोई न-कोई पीछे से कह भी देता है—भिखारी हैं ये, आज टुकड़े मिल रहे हैं, इससे आ गये हैं, मगर इनके घर में अब भी भिखारीपेशा है। क्यों ? मैं कहती हूँ, क्या यह नहीं हो सकता ?

रघू ने देखा, वह प्रसन्न थी। उसकी आँखें चमक रही थीं। अन्धकार के धूमिल आवरण में वासना के कुहरे में जब रूप छिप जाता है, तब पुरुष और स्त्री मात्र होने की आवश्यकता होती है। रघू ने उसके हृदय की अपार प्रसन्नता को तोड़ना ठीक नहीं समझा। अब यदि वह पूछ ले कि तेल जब सबको मिलेगा तब ? कितनी अनबूझ है यह अभी तक, जैसे बिलकुल लड़की; पुरुष अधिकारी है, स्वामी है, किन्तु नारी भी एक क्षण तो उसे दास ही बना लेती है। रघू के नेत्रों से रस झलक मारने लगा। लजाकर कोने में हो गई आनन्दी और कह उठी, नहीं, नहीं, अब नहीं ! उसने गर्व से अपना पेट देखा और फिर प्यार से, स्नेह से, और जाने किस-किससे देखा रघू को जो अन्धकार की

पृष्ठ-भूमि पर लगता था, जैसे यहाँ अँधेरा ठोस हो गया हो, बोल उठा हो।

(७)

कड़कता सर्दियों का बल देखकर हाड़-मांस का पुतला आदमी थर्रा उठा। कुत्ते भी अब रात-बिरात बेवक़ूफ़ी से ख़्वाहमख़्वाह नहीं भूँकते। मज़दूर-मज़दूरिनें काम पर जाने से पहले सूखे पत्ते और पेड़ों पर से तोड़ी लकड़ियों को जलाकर तापते और तब कोई काम करते। बड़े-बड़े कुनबे कपड़ों की कमी के कारण एक साथ चिपटकर सो रहते। बूढ़े बैरागी के तन पर यद्यपि चिथड़ों से अधिक कुछ नहीं चढ़ा था, किन्तु सिर पर एक तिकोना टोपा अवश्य आ गया था, जिसके कारण वह स्वयं भिखारियों को ही दयनीय लगता था। सामने की कोठी में जब मेहतर सुबह आँच जलाकर तापते, धूँआ लगकर आँखों में पानी निकल आने पर साथ ही नाक पर कपड़ा रख लेते और लामचीनी के नीले बर्तनों में चाय पीते, मज़दूरिनों की टोली चल पड़ती मिल की ओर; सड़क पर लड़ाई के काम करनेवाले बाबू ज़रूर साइकिलों पर कटोरदान लटकाये जाते मिलते या मोटे-मोटे लाला जो तोंद छाँटने पर आमादा रहते, सुबह-सुबह एक दूसरे से भाव पूछते, कल जो माल बाज़ार से इधर का उधर कर दिया उसकी डींग हाँकते, या बतलाते कि कैसे दारोग़ा ने उन्हें घेर तो लिया, मगर इन्होंने उसे वह आड़े हाथों लिया कि रिश्वत के ज़ोर से मुँह बन्द कर दिया।

डॉक्टर सुबह-सुबह वायलिन बजाता और झूमता। शीशे की खिड़कियों में से रोशनी में दीखता वह कैसे-कैसे गरम कपड़े पहनता था।

आनंदी का पेट बढ़ने लगा था। वह थक जाती थी और भूख उसे कभी-कभी यदि बहुत लगती तो कभी मन मिचलाने लगता। परसों उसे बड़े ज़ोर से, दुपहर की खाना खाने की छुट्टी में, क़ै हो गई। टोली के साथ क़दम रखकर चलने में भी वह हाँफ जाती। रघू कहता—'दो-चार दिन काम पर न जाये तो क्या कुछ हरज है?' वह सशंक नेत्रों से कहती—'मेट ने कहा है, वह दिन पूरे होने पर छुट्टी दिला देगा। अभी

से न जाऊँगी तो बरखास्त कर देंगे मुझे।' और वह थककर बिस्तर पर पड़ रहती। कभी-कभी चंपाबाई ही आकर रोटी सेंकती और बच्चा से तो अब आनंदी का कोई संबंध ही नहीं रहा था। हर माँ जब गर्भवती होती है, मतलब समाज के क़ायदों के मुताबिक, तब उसे अपने अन्य बच्चों से उतना स्नेह नहीं रहता, जितना पेट के भीतरवाले से।

उस दिन रग्घू ने आकर बताया कि उसका कारखाना अब इस जगह से हट उस जगह हो जायगा। ज़्यादा जगह में बनेगा अबकी। लड़ाई बढ़ गई है। सरकार की जीत हो रही है। आनंदी ने उसे सुनकर कहा—तब तो लड़ाई अभी चलेगी।

शाम के समय एक दिन कुछ बाबुओं के लड़के, जो भकाभक नहीं, मामूली कपड़े पहने थे, आकर उधर बोलने लगे। उनके हाथों में तस्वीरें थीं। कोई आदमी मरा पड़ा है, कोई औरत हड्डी-हड्डी दीख रही है, कहीं लाशों को कुत्ते खा रहे हैं, कहीं ढेर-के-ढेर मरे पड़े हैं।

बाहर बाबू कुछ कहते रहे। आनंदी ने जब भीतर चटाई पर पड़े-पड़े कुछ शोरगुल सुना तो दरवाज़े पर आ गई। बाहर देखा। बस्ती के लोग उन्हें घेरकर तस्वीरें देख रहे थे, बात सुन रहे थे और सबके चेहरे ग़मगीन थे। आनंदी भी धीरे-धीरे वहीं जा खड़ी हुई। तस्वीरें देखकर उसका दिल काँप उठा।

बच्चे शोर कर रहे थे, ऊधम कर रहे थे, अन्त में बाबू ने कुछ कहा। आनंदी ने इतना ही समझा कि जगह-जगह अकाल पड़ रहे हैं। माँ बच्चों को बेंच रही हैं, मज़दूर भूखे मर रहे हैं, गांधी बाबा जेल में हैं, और आज नहीं तो कल शायद हमारी भी यही हालत हो जाय। इसलिए ग़रीबों की पूरी मदद करनी चाहिए। रग्घू चुपचाप खड़ा रहा। आनंदी ने देखा। उसका दिल दहशत से भर गया। बड़े-बड़े घर के आज भीख माँगते हैं...हम भी कल ऐसे ही हो जायँगे? वह काँप उठी।

किनारे ही खड़ी होने के कारण उसने सुना, एक राहचलता सरकारी चपरासी दूसरे से कह रहा था—क्या अकल है इन लौंडों की! इन भिखारियों की बस्ती में चन्दा इकट्ठा करने आये हैं, जाते किसी सेठ के यहाँ?

आनंदी ने सुना। और उसका हृदय विक्षोभ से भर गया। उसने देखा, टोली की एक मजदूरिन ने आगे बढ़कर उन्हें कुछ दिया। टेंट में से दुअन्नी निकालकर दो क़दम बढ़ी, तभी ख़याल आया, फूलकुमारी ने भी कहा था कि कहीं अकाल पड़ रहा है। लोग मर रहे हैं। मज़दूरों में बहुतों ने कुछ पैसे भी दिये थे, वहाँ मिल के पास बसनेवालों ने। उन्होंने कहा था कि मज़दूर भूखे मर रहे हैं।

इस विचार का तार तड़पता हुआ आया और उसे गर्म-सा करता निकल गया।

भिखारी सुन-सुनकर अब लौट रहे थे झोंपड़ों की ओर, यह कहकर कि 'बाबू, यहाँ तो हम भिखारी हैं, हमारे पास क्या है बाबू? आप देंगे तो हम पलेंगे।' बाबू सुन-सुनकर कुछ परेशान हो रहे थे कि आदमी इतना परवश भी हो सकता है! यह तो ठीक ही है कि और कोई चारा न होने से आदमी ग़रीबी में भीख ही माँगता है...

और भीड़ की आड़ में से ही देख आनन्दी फिर हिचक गई। ठिठक गये पैर! दुअन्नी! फिर विचार आया, और सौदामिन ने ही कौन मोती दिये होंगे बढ़ ही गई और डाल दी झोली में दुअन्नी। सामने खड़े लड़के ने पूछा—'तुम कौन हो माई? क्या काम है तुम लोगों का?'

क्या काम है ऐसा जो वह बताये? सङ्कोच हुआ। सोचा, शायद ग़रीबी का मखौल कर रहा है, किन्तु फिर कहा—मजूर हैं हम। मज़दूरी करते हैं। और कहते हुए उसका सिर उठ गया जैसे वह बिलकुल शर्मिन्दा न थी।

लड़के जाने क्या-क्या नारे लगाकर चले गये—नेताओं को छोड़ दो। कहाँ किसका कैसे राज हो; क्यों छोड़ दें, कैसे छोड़ दें, कुछ नहीं समझी वह। देखती रही चुपचाप।

जब शाम का उजाला अन्धेरे में बिलमा गया, उसने रग्घू की ओर नये गर्व से देखा, जिस दृष्टि में सन्तोष था कि आज भीख देकर मैंने अपने पहले भिखारी होने के पाप को मिटा दिया। अब हम अपने बूते पर खाते हैं। दूसरों की कृपा पर नहीं पलते। किन्तु रग्घू चिन्तित

था। परेशानियाँ बढ़ती जा रही थीं। आनन्दी अपने दुःख कहती नहीं तो क्या वह भी नहीं समझता ? दवाओं का खर्चा कैसे चले ? मंडी में नाज मिलता है तो बड़ी मुश्किल से। मिल में नाज मिलना बन्द हो गया है, क्योंकि सरकार ने कन्टरौल लगा दी है और अब सबको मिल जायेगा। यह एक बड़े जोर का वादा था जिसको पूरा न होते देखकर ग़रीबों की भैंस हाथेनी मालूम देती थी। सर्दी में कपड़े भी नहीं थे और सौ बातें...

तभी चम्पा ने बूढ़े बैरागी से कहा—आज तो आनंदी ने भीख दी है मामा ! अब तो बस्ती के लोगों का घमंड समाये नहीं समाता।

बूढ़ा हँसा और उसने इसी बात की नरायन से चर्चा की जिसे सुनकर वह खूब हँसा और सबने आनन्दी के नये ढङ्गों पर कड़ी आलोचना करके अपना जोश ठंडा किया।

(८)

धीरे-धीरे सबने देखा, नरायन के घर की छत पक्की बन गई और ऊपर अट्टा बन गया। सामने की सफ़ेदी लिपी डौरियों पर उसने गमले रख दिये और नीचे दरवाज़े के दोनों तरफ़ सौना तथा स्वस्तिका बना दिये। नरायन पहुँचा हुआ भिखारी था। घर के पीछे की तरफ़ उसने गाय बाँध रखी थी, जिसे उसकी सूखी चमड़ीवाली बहू सतरमनी पुचकारती हुई दुहती थी और पड़ोस के स्टेशन के चायवाले को धेला कम ही के हिसाब से दूध बेच आती थी। कभी-कभी नरायन उसके सामने ही भीख माँगता था। वह चुपचाप देखती, जैसे उसे जानती न हो। कोई नरायन को फटकारता तो दयार्द्र हो कह उठती—बेचारा ग़रीब है और चायवाले से पैसा दिला देती। चायवाला असल में अपने को पूरा आशिक हुसैन समझता था और हर जली-जलाई बीड़ी के लिए अपने को एकमात्र माचिस समझता था। अपने ठीक था। सतरमनी के पीछे-पीछे लोग रतरमनी या ठहाके के साथ जगरमनी कहते थे, किन्तु वह सदा भोली बनी रहती थी। उसके चार बच्चे थे, जिनमें से सबको वह उतना ही प्यार करती थी जितना अपनी गाय के बछड़े को। चम्पा

को देखकर वह हँसती थी और सामने उस पर ताना कसती थी। नराइन से उसका सम्बन्ध घर में था ; क्योंकि नरायन के पास पक्का घर होना, गाय होना वैसा ही अपराध था, जैसा आजकल ऊँची नौकरी पाने की हौंस रखके किसी बेपैसेवाले ग़रीब खान्दान का होना।

बस्ती में इसकी कहीं कुढ़कर दबे-दबे चर्चा हुई, कहीं मज़ाक के तौर पर ज़ोर-ज़ोर से और नरायन बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाता, मज़दूर अपनी तक़दीर का उसकी तक़दीर से मुक़ाबिला करते।

मँहगाई दिन-दिन बढ़ी जा रही थी। हर स्टेशन पर शहर में हर नये आदमी को, घुसते ही ताँगेवाले, हर चीज़ का दाम बताकर बढ़ी हुई माँगों को ठीक साबित करने के लिए सदा मुस्तैद रहते।

इसी बीच एक दुर्घटना हो गई। आनंदी जब सात महीने का बड़ा पेट लेकर भी मिल जाकर मज़दूरी करने से बाज़ नहीं आई तो पूँजी-पतियों को हठात् उस पर दया आ गई। सरकार ने उस दया के लिए उन्हें मजबूर कर दिया। कोयले की कमी के कारण मिल बंद हो गई। बसंत के दिन थे। चमारों के टोले में जब रात को फाग होते, डफ बजती, स्वाँग होते और पतली बारीक आवाज़वाली चमरियाँ गाना गाया करतीं, बस्ती में, मिल में काम करनेवाली औरतें उदास और उत्सुकता से उस दिन की बाट जोहतीं, जब मिल फिर खुलेगी। सरकार ने कह दिया, रेलें खाली नहीं हैं, सबों ने कह दिया, सरकार कोयला नहीं देती, और मिल बंद हो गई। अब यह औरतें काम-वाम न होने के कारण कभी तो मिल जातीं, वहाँ के आसपास बसे मज़दूरों के घर जाकर दुखड़ा सुनतीं, रोतीं, या घर पर रहकर एक दूसरे से लड़तीं। इन्हीं दिनों ज्यादा आराम से रहने के कारण कोई-कोई बहुत परेशान रहती या उन उपायों को सोचती जिससे बाल-बच्चों को भूखों मरने की नौबत न आये। गेहूँ के दाम लगातार चढ़ रहे थे। मंडी में नाज ही नहीं मिलता था। एक दिन शहर में लूट मच जाने तक की ख़बर फैल गई थी। आमदनी रुक गई थी। कई स्त्रियाँ फिर से भीख माँगने लगी थीं और बार-बार अपमान होने पर घर लौटकर अपने टूटे-फूटे आद-

मियों से कहती थीं कि उसने डाँटा, किसी ने फटकार दिया, पहले तो बुरा नहीं लगता था, तब छोटे थे, अब तो बड़ा मन उचाट खाता है। नहीं, भीख नहीं मागूँगी, और तभी बच्चा कें-कें करके रो उठता। अगर पति भी भीख माँगता होता, तब तो हँस देता और मजूरी करता होता, तो मुँह लटकाकर सोचने लगता। इस परेशानी का नतीजा यह हुआ कि बस्ती की बहुत-सी औरतें गर्भवती हो गईं। एक तो वसंत की ऋतु, दूसरे ग़रीबी की परेशानी, जिसका ओर-छोर कहीं दिखाई नहीं देता, तीसरे वही एकमात्र सुख की पराकाष्ठा...

उधर नरायन ठाट बाँध रहा था। उसके उदाहरण ने फिर से स्त्रियों के हृदय में आशा भरना प्रारंभ किया; किन्तु जब वे सब स्त्रियाँ मिलतीं तब उनमें वह स्वाभिमान भीतर-ही-भीतर जाग उठता जो अपने हाथों से कमाकर खाने में होता है। कोई अगर उस समूह में भीख माँगने की बात करती तो फ़ौरन जवाब मिलता—तू क्या जगरमनी बनना चाहती है। अरी रंडी भी तो मेहनत करके खाती है, और रंडी बनने को हिन्दुस्तान की किसी भी वर्ग की स्त्री, जब तक बहुत ही आदत, या परिस्थिति न बिगड़ जाये, तैयार नहीं होती। और इसी तरह मज़दूरों की परेशानी बढ़ती जाती। दिन में वह एक दूसरे के सिर के जूएँ बीनतीं, ताल के किनारे जा बैठतीं, नोन, तेल, लकड़ी का रोना रोतीं, एक नहीं, दो नहीं, सब-की-सब...और चारों ओर उन्हें अँधेरा-ही-अँधेरा दिखाई पड़ता। अकेले मर्दों की कमाई से पूरा ही न पड़ता, और बस्ती के टूटते छप्परों की ओर किसी की दृष्टि जाती भी तो वह बरबस आँखें फेर लेता; क्योंकि फूस भी काफ़ी मँहगी हो गई थी और नाम मात्र की ऊँची मजूरी पाकर भी मजूर दिन-दिन ग़रीब होते जा रहे थे; क्योंकि दाम मजूरी से कहीं अधिक ऊँचे चढ़ गये थे।

इन्हीं कारणों से आनन्दी एक दिन बिस्तर पर पड़ गई और रग्घू ने ज़मीन पर बिछी चटाई पर सोना शुरू किया।

ताल के किनारे की ज़मीन सूख चली थी। फागुन की सुलगती हवा चलती और सूरज अनजान-सा उठता, डूबता...रेलें आतीं, सीटी

देकर चली जातीं, डॉक्टर सुबह-शाम फिर भी वायलिन बजाता और आनंदी दर्द से कराह उठती।

(९)

रात का गहरा अँधेरा छा रहा था। चारों तरफ़ सूखी-सूखी-सी हवा बह रही थी, पतली-सी, ऐसी ठंडक लिये जो हड्डियों पर असर कर जाये, आदमी बीमार हो जाये, लेकिन फिर भी सुखद-सी, मतवाली-सी। झोंपड़े के भीतर आज दीपक जल रहा था। लौ कभी हवा के झनझन करते हल्के झोंकों में काँपती, बड़ी-बड़ी छायाएँ नाचने लगतीं और आशा की वास्तविकता की तरह काँप-कूँपकर छोटी हो जातीं, स्तब्ध हो जातीं, अचल हो जातीं और दीपक फिर एक आँख से अँधेरे को देखता, फिर आँख मिचकाता, झूमता...

खाट पर दर्द से बेहोश आनंदी कभी-कभी बर्रा उठती थी। पेट में ऐंठा-सा चल रहा था जैसे कुछ घुमड़कर निकल आयेगा अब, और वह दर्द से चिल्ला उठी, दाँतों की किचकिची बँध जाती। मुट्ठियाँ बँध जातीं और वह चीत्कार झोंपड़े के बाहर जाकर हाहाकार करने लगते।

नत्था चला गया, नरायन चला गया, अकेला रग्घू बैठा झोंपड़े के द्वार पर हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। हवा उसके सीने पर फिर रही थी। वह चुपचाप सोच रहा था। बस्ती की जिन स्त्रियों ने आनंदी की हालत देखी थी, उसे बहुत ही नाजुक बताया था। बचने की कम ही उम्मीद थी। लेकिन साथ ही रग्घू सोचता कि उन्होंने बच्चे जने हैं; मगर कोई इलम तो उनमें नहीं। इस बात को दुनिया का कोई आदमी अस्वीकार नहीं करेगा कि बच्चा जनना कोई इलम का काम नहीं है। रग्घू कहता—मर जायेगी तो लल्ला अपने आप चंपा का हो जायगा। मुझे तो पहचानेगा ही। मगर फिर उसके दिल में उस औरत के लिए एक अजीब स्नेह उमड़ता जो उसे अपना इतना मानती, वह जिसका मरद था, सुख-दुःख की साथिन, और फिर वह आह लेकर आसमान की तरफ़ देखने लगा।

आनंदी अभी 'मिल' जा नहीं सकती, और अभी तो मिल भी बंद

है। वह मशीन क्या चलेगी, जिसमें तेल न हो, उसने इसी बात को दो बार दुहराया।

अभी-अभी कबीर के पद गाने से जो स्वयं कबीर कहाता था, बस्ती का एक अधेड़ उम्र का भिखारी उसे साहस बँधाने आया था। कहा था उसने कि बेटा! कितनी बची है अब? काहे की इज्जत है हमारी? अब बाकी भी कट जायेगी यों ही। मगर तुम नौकरी करते हो, कमाते हो, अच्छा है यह भी, यह न सही वो ही सही। असल मतलब तो पेट भरना है। और कबीर के जाने के बाद आनंदी ने दर्द की घोर यंत्रणा में बुलाकर रग्घू से कहा—मैं जा रही हूँ। मैंने जो तुम्हें दुःख दिया हो, उसके लिए माफ़ करना। मैं हूँ ही खराब। सदा किसी-न-किसी से झगड़ती रही। सबसे कह देना, आनंदी सबसे माफ़ी माँगती थी...

और वह बड़ी जोर से कराह उठी।

चंपा और सौदामिन हँस दी थीं। चंपा ने मुख टेढ़ा करके पूछा—बेटी! बहुत दरद चल रहा है? पहला बच्चा तो नहीं। और क्या तू पहली औरत है जिसके कोई बच्चा होगा? अरी, बच्चा जनते बनियों की औरतें मरती हैं, बनियों की, बहुत जनती हैं, बहुत मरती हैं, और मर-मरके जी जाती हैं...

सौदामिन ठठाकर हँस पड़ी।

आनंदी कहने लगी—लल्ला को चंपा से न लेना। बेचारी बड़ी अच्छी है। वह तो उसी का है, उसी के पास रहने देना।

और फिर कराहकर कह उठी—एक बात मानोगे मेरी?

रग्घू ने प्यार से पूछा—क्या है आनंदी? कह भी तो

आनंदी ने ठंडी साँस भरकर कहा—दवा नहीं कर सके, इसका अफ़सोस मत करना। मत करना दुःख कि जी जाती तो अच्छा होता... मगर तुम जहाँ तक हो सके, भीख न माँगना।

चम्पा चुप हो गई। सौदामिन ने डाँटते हुए कहा—कोई नहीं मरता-वरता आज। कोई ऐसी अजीब बात हो रही है क्या यह

खबरदार जो मरने-वरने का नाम लिया है फिर से। और जब कल साँड़नी-सी चलेगी तो नाक काट लूगी, नाक...एक मिल गया है न पागल-सा मरद कि रो-रोकर सारा काजर बहाये दे रही है...

वह और भी न जाने क्या-क्या बड़बड़ाई और उसी स्वर में उसने रग्घू से कहा—जाओ जी तुम। सरम नहीं आती? मरद होकर खड़े हो यहाँ। चलो बाहर! सब हो जायगा, देखें कौन मरता है सरमदार ऐसा। बता देंगे सब बखत आने पर...

और रग्घू झेंपा-सा बाहर आकर बैठ गया। जबरदस्ती एक डाँट लग गई।

किंतु फिर भी हृदय की धुकधुकी बन्द न हुई। यह औरतें कैसी हैं जो इतने कष्ट को देखकर सिरफ मुस्करा रही हैं और कहती हैं, कोई बात नहीं, सब ठीक है! दवा नहीं, दारू नहीं, और कल को पैसा भी नहीं।

रग्घू ने एक बार आकाश की ओर देखा और फिर सिर नीचा कर लिया। हुक्का बुझ चला था। एक फिर जोर का कश लगाया और चिलम औंधा दी।

झोंपड़े में एकाएक हलचल-सी मच उठी। आनन्दी बड़े जोर से कराहने लगी और एक चीख के साथ बेहोश हो गई। चीथड़े भींग गये और भीतर से चट-चट की दो आवाजों के पीछे किसी का काँ-काँ शब्द गूँज उठा।

रग्घू निःस्तब्ध दाँतों में होंठ मींचे बैठा रहा। भीतर एक सन्नाटा छा गया, जैसे आँधी के बाद बिलकुल नीरवता छा जाती है और नये भाव उदय होने लगते हैं।

इसी समय हँसती हुई चम्पा ने द्वार में से झाँककर कहा—सुना रग्घू?

रग्घू ने काँपते स्वर में पूछा—बच गई?

'बच गई, भैया, बच गई, ऐसे औरतें मरने लगें तो दुनिया क्यों चलेग बेटा!' और एक हास्य गूँज उठा। चम्पा, कुछ हर्ष से जो नारी

को सहज जन्म होने से होता है, गद्‌गद्‌ स्वर से व्यंग्यपूर्ण कह उठी—'देवता मानें तेरे रग्घू! देख, बस्ती में एक नया मजदूर।'

रग्घू का हृदय गर्व से भीतर-ही-भीतर विद्वेष-हीन-सा गरज उठा—वह कुछ भी क्यों न हो, भिखारी नहीं है।

और उसने देखा, रात धीरे-धीरे अलसाकर बीत चली थी; नीरव, उन्मना-सी, शिथिल-सी। हल्की सफ़ेदी आस्मान में एक तार बनकर काँप रही थी। आस्मान साफ़ था, हवा भींग गई थी। और रग्घू ने सुना कि दूर किसी मुर्गे की बाँग सन्नाटे में गूँज उठी, जैसे अब सोने का समय नहीं था।

गूँज

जब साँझ आ गई तो बिजली घर में छुट्टी होने का वक्त आया और जब मनीजर साहब अपने कोट को पहनकर कमीज का कॉलर ऊपर कर रहे थे. हरिया अपने तन पर पड़ी गर्द और मैल को धोने के लिए नल पर बैठा था। जब सूरज काफ़ी उतर चला तो वह भी घर की तरफ़ चल पड़ा! संध्या की थकान और जवानी का नशा उसके दिल में विप्लव कर रहे थे।

बीड़ी जल चुकी थी। दूसरी बीड़ी निकालने को जेब में हाथ डाला मगर वहाँ बीड़ी पाना ऐसा ही था जैसे अब क़िले में अकबर से मुलाक़ात हो जाना।

क़िले के सामने गोरे ठहाके लगा रहे थे। ऊपर यूनियन जेक उनकी सलामी पर थरथरा रहा था। शाम को उतार दिया जायेगा। यमुना की लहरों में युगांतर से फरफरी मच रही थी। संध्या की धूमिल बेला थी। अब क़िला बंद ही होनेवाला था। सामने से एक फ़क़ीर गाता हुआ चला जा रहा था। हरिया का ध्यान उस तरफ़ न गया, क्योंकि वह जानता था कि वह बुड्ढा सिर्फ एक ख़ुदा-ख़ुदा की रट लगायेगा, जिस ख़ुदा पर विश्वास रखना भी वैसा ही था जैसे झोंपड़ी जल चुकने के बाद बुझा देने का हुक्म देकर नवाबी का ठाट चलता हो।

कुछ विद्यार्थी चले जा रहे थे, जिनके दिल में ग़रीबी के लिए दर्द था, जो नियामती पूँजी के कपड़े पहने थे, मगर जिनके पैरों के नीचे की जमीन उनकी ख़ुद की नहीं थी। वे पढ़े-लिखे थ! मगर शाख़ इतने कि हरिया सिहर उठा। उनके बाद आईं नजर बचातीं चुलबुलातीं लड़कियाँ और उनके पीछे मध्यवर्ग का रुद्ध मस्तिष्क लिये, रुपये और काम की तबाही से अपने को सुकरात और ईसा मसीह समझनेवाले कालेज के मास्टर। हरिया चमक उठा, मगर उसका दिल कहने लगा—जे

अकबर का क़िला है। जिसमें एक दिन नूरजहाँ के नाज़ पलते थे वहाँ ये लड़कियाँ और लड़के सच्चाई की ओट में जूआ खेलते हैं, और जहाँ मानसिंह जैसे रईस और बीरबल जैसे लायक सिर नवाये खड़े रहते थे वहाँ ये मामूली मास्टर सिर उठाकर चलते हैं!

फ़कीर गाता चला आ रहा था। उसकी आवाज़ यमुना की नीली और भीगी लहरों में एक वेदना भरती हुई उमड़ती चली आती थी। यह वह आवाज़ थी जिसके ओर-छोर आदमी की शाना-शौकत के शोर को छू छूकर तड़पा रहे थे। क़िला अँधेरे में काला हो चला था। मोटरें लौट गई थीं, दरवाज़ा सूना हो गया था। भीतर कहीं सातों समुन्दर के खुदाई फ़रिश्ते कबाब और शराब के बूते पर चक्के फाँसते होंगे। जिन्हें अपने आराम के लुट जाने का डर है वे उनकी खाट के पाये बने हुए हैं, क्योंकि वे भूल गये हैं कि उन अमीरों के घर के बाहर भी एक दुनिया है। मगर उन्हें क्या पड़ी है कि उनके बँगले के बाहर कोई मर रहा है या वे निकलकर देखें। मर रहा है? तो ऐसी ग़लती वह क्यों कर रहा है?

सड़क पर मोड़ आया। आगे कुछ भिखारी बैठे थे। सामने मुर्दघटा था, जिसके पास एक मंदिर में बाबा गजे सिरों के बल खड़े होकर ईश्वर की याद कर रहे थे। ये वे ही लोग थे जो कुछ महीने पहले घाट पर नहाती एक अकेली औरत के साथ ज़्यादती करने को तैयार हो गये थे। दुनिया उन्हें धर्मी कहती थी और पैसेवाले उन्हें पैसा देते थे। तब एक पादरी आया था। कितना दयावान था!

और क्षण-भर में हरिया ठठाकर हँस पड़ा। उसके सामने फिर वह भूली हुई तस्वीरें हठात् नाचने लगीं। उस दिन वह पादरी उसे अपने साथ ले गया था और कुछ दिन बाद वह औरत सचमुच साड़ी छोड़कर साया पहनने लगी थी। किसी ने कुछ नहीं कहा। औरत जवान थी और उसके रूखे चेहरे पर मदमाता जोबन किलकारियाँ मारने लगा था।

हरिया उसे एक विशेष दिलचस्पी से देखा करता था, क्योंकि कल

शायद वह उसकी रोटी पर पल सकती थी और आज पैसा होने के कारण हरिया अधिक-से-अधिक उसका नौकर हो सकता था। लोग आते-जाते उसे हिकारत की निगाह से देखा करते थे और वह स्त्री उनको बदले में कभी स्नेह से नहीं देखती थी। गोरा पादरी उसे अत्यन्त वात्सल्य से पालता था।

वह स्त्री एक दिन साँझ के वक्त बादलों की तरफ़ देखती हुई कुछ सोच रही थी। किसी ने उसे पुकारा—रूबी!

हरिया हँसा था।

और उसके बाद पादरी और रूबी हाथ बाँधकर दुआ माँग रहे थे।

बड़े दिन के रोज़ घटियाँ टनटना रही थीं। क़िले, के बाहर की सड़क पर एक अजीब रौनक़ थी। हरिया ने अपार विस्मय से देखा था कि रूबी एक जवान अंगरेज़ सोल्जर के साथ टहल रही थी, और जैसे हिन्दुस्तानियों के प्रति घोर घृणा ने उसे उस गोरे के साथ बाँध दिया था।

हरिया सिहर उठा। उसके अनन्तर वह स्त्री एक नहीं, दो नहीं, अनेक गोरों के साथ कई-कई शाम दिखाई दी।

वह भिखारियों के बिलकुल पास आ चुका था। कुछ भिखारी थे और कुछ फेरी लगानेवाले। हरिया पास जाकर बोला—'कहो सा'ब, क्या खबर है?' और सबसे बड़ी चीज़ उसे उनमें मिलाने की यह थी कि वह भी ख़ुद उनमें से ही एक था और कुत्ता पहँचान लेता है कि मालिक और दुश्मन में क्या फ़र्क है।

फ़कीर दूर हो चला था। हरिया को धरम से नफ़रत थी। वह पल-भर में उनमें मिल गया और हाथों-हाथ चिलम उसके हत्थे भी चढ़ी। एक कह रहा था—सुना भाई फिर, तो वे कॉलेज के लड़के थे। मेरे ख़याल में होंगे रईसों के ही?

दूसरा बोला—जरूर भाई सा'ब! अमीरों-रईसों के न होते तो क्या इस गिरानी में वह कॉलेज में पढ़ते होते?

'ख़ैर, सुनो तो! मैं आज रोज़े गया था ताज बीबी के, मीनार है

नी वो सी जिस पै हज़ारों आदमी चढ़कै दुनिया देखें हैं विसके किनारे तवायफ़ाँ बैठी थीं। विधर से निकले वे कॉलेज के लौंडे, तुम्हारी क़सम बड़े मनचले थे।'

'अजी मत पूछो,' एक और बोल उठा।

'हाँ, तो, गबरनर सा'ब' कहनेवाला अकड़ा, क्योंकि वह समझ रहा था कि वो कुछ ज़्यादा पढ़ा-लिखा था, और खुद ही समझाकर बोला, 'अबे यारों लाट सा'ब, ताज देखने आये थे ताज! तो बिन कॉलेज के लौंडों के साथ लड़किनियाँ भी थीं और दो-एक मास्टर भी थे। वे एक तरफ़ाँ चल दिये और मैं भी बिनके साथ निकलने को चला मगर वो तो बिगड़ उट्ठे। तब तक तवायफ़ें भी उठ खड़ी हुईं। सिपाही मुझे देखकर बिगड़ा। तब मैं उन तवायफ़ों के साथ बिनका नौकर बनके जान बचाके आया। वे पढ़े-लिखे साथ नहीं लाये। भैया, जमाना है, जमाना। और लाट सा'ब के तो बड़े अजीब ठाट थे।'

हरिया ने सुना और वह समझने की कोशिश करने लगा क्योंकि समझने पर और कोई वहाँ ग़ौर ही न करता था। अगर कोई ग़रीबी है तो वह बस ग़रीब है। कोई क्या करे? और बड़े आदमी अपने को वाक़ई ख़ुदाई नूर का हक़दार समझते हैं। मगर हरिया के दिमाग़ में एक बात गूँजने लगी जो वह ख़ुद नहीं समझ पाया। आदमी आदमी को नहीं चाहता, बनती-बिगड़ती हर चीज़ पर लट्टू हो जाता है। पच्चीसों भूखे मर जाते हैं और कोई नहीं पूछता, मगर सिकन्दरे में मरे अकबर के लिए भीड़ इकट्ठी हो जाती है।

एक साधू जो वहीं पड़ा था, नशे में बोला—बच्चा, शंकर रटै, संकट कटै। बम भोला का भजन करौ, भव-सागर को पार करौ।

हरिया समझ गया, क्योंकि इस बात को वह अरसे से सुनता चला आ रहा था। वह बोला—बाबाजी महाराज! देख रहे हो मुझे कुछ सूना-सूना-सा लगता है। न जाने क्यों—

वह स्वयं अपनी बात पूरी नहीं कर सका, जैसे जो वह कह गया था वह उसने कभी नहीं कहा।

'ब्याह कर लो, ब्याह' बाबा ठठाकर हँसा। उसका स्थूलकाय भस्म से रँगा शरीर हिल उठा। हरिया कुंठित हो गया। वह बोला, 'देखो बाबा! सदियों से यह क़िला खड़ा है, और बरसों से यह जमुना बह रही है। अनगिनत रईस बनकर बिगड़ गये, तब अंधे परमात्मा ने हमें ही क्यों छोड़ दिया?'

'अरे क्या खबर है रे तुझे बच्चा! पहले जनम में तू क्या था और आगे क्या होगा? कुछ खबर है? अरे ब्राह्मण को आटा चाहिए थोड़ा और थोड़ा-सा नशा महादेव में मिलने को।'

हरिया कहने लगा—तो क्या तुम्हारा मतलब है, मैं भी साधू होकर दूसरों की दया पर कुत्तों की तरह पेट पालूँ? और मैं तो बाभन भी नहीं, जे कैसी आफत है?

अगर कहीं बाबा सुन लें तो बस गजब ही हो जाये। मगर बाबा नशे में झूम गये थे। वे सुन ही न सके। फेरीवाला घीसा आगे बढ़के बोला—समझके बोला करिएगा जनाब! पहुँचे हुए हैं साधूजी। अभी गुस्सा हो जाते तो खैर न थी। जे किसी से माँगने नहीं जाते हैं कहीं, ईसुर आगे रख जाता है इनके तो। इस बखत समाध में लगे हैं। समझे? बड़े-बड़े बाच्छाह इनके पैरों पै सिर रखै हैं। हिटलर और पंजम जारज तो इनकी सलाह से ही सब काम चलतू करै हैं। अरे इनकी एक हँसी में दुनिय। लुट जाय, कोई डर नहीं। अभी बिस दिन सूआ कोली के बच्चा नहीं होवै था। साधूजी को बुलाया। मिन्टों में हमल धर दिया, मिन्टों में। इनके लिए बड़े-से-बड़ा, छोटे-से-छोटा, फरक नहीं है इनमें भाई सा'ब।'

हरिया प्रायश्चित्त-सा करता हुआ बोला—'अच्छा? तो बड़ी ग़लती हुई। यार, कहीं नाराज़ तो नहीं हो गये?' करीम खाँ बटन बेचनेवाले बोले—अमाँ, नाराज़ होना ये क्या जानें? तुम भी रहे चौंघट ही यार! जे अल्ला के नूर हैं। कहीं जे ऐसे हम खिदमतगारों पै नाराज़ हो जायँ तो समझ ली भैया! अब काम नी चलने का।'

'बेसक्क, बेसक़,' घीसा ने दाद दी, 'अरे इनकी बात नहीं, तकदीर है, लाला, तकदीर !'

इसके बाद बाबा ने फिर आँखें खोल दीं और हरिया को भक्तिभाव से सामने नम्र पाया।

'बाबा,' हाथ जोड़कर करीम खाँ बोले, 'बीबी-बच्चे सब भूखे हैं।'

बाबा कड़ककर बोले—'साले ! तेरी बीबी और बच्चों पर बज्जर टूटे। हरामी।'

'बाबा ! बाबा ! लो चिलम पियो' कहके किसी ने बढ़ा दी। बाबा पीने लगे। कुछ देर बाद बाबा बोले—बेटा, आटा बचाके बेचना भी पुन्न है, पुन्न। इसमें गंगास्नान का फल मिलता है, समझे ? हमने बड़े-बड़े नसे किये हैं !

करीम खाँ बोले—मैंने भी बहुत होड़ बदी है बाबा !

घीसा ने कहा—लेकिन बाबा, कुछ माँ-बाप का खयाल जरूर था...

'तो क्या अब फिर हैं घीसासिंह। जब तक करीम खाँ के माँ-बाप जिंदा रहे, बन्दा नशा करने में डरता था। मगर जब से वे गुजरे तब से जो नशा पहले गालों को लगता न था, ऐसा लगा है कि—' और उसके मुँह पर एक हँसी खेल गई। दाँतों के बड़े अवशेष ने चेहरे की और सब चीजें ढँक दीं। 'समझे ग्यारा मील से एक रुपया पूरा टिकाके इक्के में जाते थे और बोतल को कपड़े में बाँधकर लाते थे। कहीं पकड़ जायें तो सजा हो जाये। फिर दो-दो दिन शराब की दूकान पर रहना, सुलफे-गाँजे के दम लगाना......

घीसा ने काटकर कहा—'अबे, गाँजे की सरत मत बदियो हमसे...'

'तो गाँजा न सही। और सुन तो ले। तू तो बच्चा है, बच्चा...'

हरिया चकरा गया—इतना नसा ?

'अबे, तू रहा चौंघट का चौंघट ही। अबे, वाह बे गँवार ! हम जानें दुनिया की रङ्गत। फिर वाँ से जाके सिनीमा में छः पैसे का टिकट लेके देखना...खूब मजे किये हैं यार, खूब ! और बाबा की महर से...'

बाबा उठे और एक ओर चल दिये। अँधेरा झुक चला था, किन्तु

चाँद बगावत का दहकता तारा बनकर उठा आ रहा था जिसकी रोशनी चारों ओर फैल रही थी। हरिया उठा। उठते समय उसने सुना, घीसा कह रहा था—'आज ही तो जुमा है, देख साले के सात; बीबी के बत्तीस, बच्चों के बाईस और हरामी के हुए आठ। कुल हुए उन्हत्तर। इसमें से गये बीस—उन्निन्चास। लगा दीजो तू बिंदी पर और मैं हरूफ़ पर। रामबाण है। शर्तिया जीत। छनगी अबके।'

हरिया चलते-चलते कुछ सोचने लगा। एकाएक उसे कुछ ख़याल आया। जेब में देखा, चार पैसे पड़े थे। दो को उँगलियों में पकड़ लिया। और धड़े के अड्डे की तरफ़ चल पड़ा।

रात सन्नाटे की जैसे अपनी एक सहेजी बात थी। पेड़-पत्ते, सड़क, सब सो रहे थे। दूर जाड़े पर तैरते क़िले में बजते घण्टों का स्वर गूँज उठा। हरिया ने गिना, सात बज चुके थे। उसे विचार आया, जल्दी यदि वह नहीं लौटा तो शायद हरचन्दी दूकान ओढ़ा जाये और वह रात-भर भूखा रहे। उसने पगडण्डी पर चलना शुरू किया कि वह दो खादर पार की नहीं कि आ गया यमुना के पुल का मोड़। बस वहीं खलीफ़ा के डेरे से दूर ही कित्ता है। आनन-फानन का रास्ता है फिर तो।

हरिया तेज़-तेज़ चलने लगा। सन्नाटे में उसने अपनी ही पगध्वनि सुनकर एक बार पीछे मुड़कर भी देखा। कोई नहीं था। वह—बालम आय बसो मेरे मन में—गुनगुनाता हुआ चलने लगा। एकाएक उसने सुना, खादर के पीछे की तरफ़ कोई रो रहा था। हरिया एकाएक चौंक उठा। स्वर किसी स्त्री के रोने का था। इतनी रात गये कौन रो रही है यहाँ? वह कुछ निश्चय नहीं कर सका। उसने क़िस्सा ज़रूर सुना था कि शाहज़ादे कासिम पर चुड़ैल आसिक हो गई थी और बियावान में उसका पीछा करती थी। अज्ञात आशंकाओं से उसका हृदय भर गया। कुछ देर वह चुपचाप खड़ा रहा। उसके बाद उसने सुना, कोई जा रहा था और रोने की वह आवाज़ धीमी होते-होते शून्य में खो गई। भयानक सन्नाटा छा गया। हरिया एकदम सिहर उठा। वह अभी कुछ निश्चय भी नहीं कर पाया था कि टीबे के पीछे से 'काँ, काँ!' की ध्वनि

गूँज उठी। इस रोने में न वेदना थी, न दिल फटने की-सी व्याकुलता। यह केवल एक पुकार थी...

हरिया टीले के पीछे की ओर मुड़ गया।

घास के ऊपर कपड़ों में लिपटा एक बच्चा पड़ा रो रहा था। हरिया उसके पास चला गया और डरते-डरते उसने देखा, बच्चे का रंग बिलकुल फक गोरा था, जैसे अँगरेजों के बच्चों का होता है। उसके हाथ-पैर सुडौल थे। बड़ा प्यारा था। टुम-टुम देखनेवाली वह आँखें बिलकुल काली थीं और बाल भी बिलकुल स्याह थे। हरिया कुछ भी तय नहीं कर सका कि वह बालक था किसका। एक सुदूर की झलक से लगता था जैसे वह किसी जान-पहचान के चेहरे से मिलता जरूर है। वह अपलक उस अभागे को देखता रहा जिसे कलङ्क लगने के भय से उसकी पत्थर-दिल माँ जंगल में अकेला, असहाय छोड़ गई थी।

हरिया ने सुना, दूर-दूर फ़कीर गा रहा था। रात की निःस्तब्धता में उस मरघट के पास से गुजरतों का दिल दहल-दहल उठता था।

जिसमें हुस्न की जल रही शमा
वह हड्डियों का मजार है,
जो तुझ पर चढ़ रहा नशा
वह बुझते दिन का ख़ुमार है।

यमुना की रौद्र गड़गड़ खादरों में से गूँज रही थी। हरिया देख रहा था। अकबर की छाया में भिखमंगे पड़े थे, जो न अकबर के थे, और न कभी जिनका अकबर था। यह आगरे का विशाल नगर था जिसमें वैभव की छाया दिन-दिन भीषण हो चली थी।

रोने का मोल

(१)

जब साँझ हो आई और अँधेरा आसमान की ललाई को फीका करने लगा तब शहर की बिजली की बत्तियाँ जगमगा उठीं। दूकानदारों की पलकें ठण्डी हवा पाकर कुछ क्षण को बोझिल-सी धूलि से ढँक गईं। कोलाहल बढ़कर थमने लगा। सड़क चलने लगी और कोहरा अभी से 'चिल्ला' में सघन होने लगा।

लोग घरों के दरवाज़े बन्द करने लगे। तभी एक बड़ा-सा ताक़तवर कुत्ता गली में से निकलकर बीच सड़क पर रोने लगा। राहगीर चुपचाप चले जा रहे थे। किसी ने भी उससे कुछ नहीं कहा, केवल एक-आध इक्केवालों ने उसे राह से हटाने को ज़ोर से चाबुक की लकड़ी को पहिये में अटकाकर खड़खड़ा दिया। उसके निकल जाने पर कुत्ता फिर बीच में आकर रोने लगा।

दो मिनट बाद ही एक बड़ा-सा नुकीला पत्थर उसकी पीठ पर झल्लाकर आ गिरा। कुत्ता एक बार ज़ोर से रोया और भूँकता हुआ गली में मुड़ गया। फेंकनेवाले ने मकान की गौख में से हँसकर कहा—'भाग गया साला। इतना बड़ा बदन लेकर भी बिलकुल बेकार और डरपोक है।'

पण्डित श्रीनारायण ने उफनते हुए कहा—इतने सड़क पर चलते हैं, कोई कुछ नहीं कहता, धर्म नहीं रहा, वर्ना दिन-दहाड़े कहीं भला सड़क पर कुत्ता रोने दिया जाता है?

बड़े लड़के गोविन्द ने कहा—चाचा! इसकी तो गर्दन काट देनी चाहिए।

छोटे मनोहर ने कुछ न समझकर कहा—रो लेने दो उसे, उसी ने उस दिन मेहरा के घर से उतरते चोर को पकड़वाया था।

माँ ने टोककर शीघ्रता से कहा--नहीं रे, यह बुरा सौन है। यमदर्शन होते हैं। क्यों मुहल्ले में मारे है सबको ?

श्रीनारायण गरज पड़े—'मनोहर ! अबकी कहियो ?'

मनोहर उठकर गंभीर हो गया। अँधेरा स्याह पड़ने लगा था। गोविन्द ने झटके से दरवाज़ा भेड़ दिया। अंधकार में से कुत्ते ने सिर घुमाकर इधर-उधर देखा। दरवाज़ा बन्द था। क्षण-भर में ही वह सड़क पर आ गया और ज़ोर से रो पड़ा। और द्वार खुलने के पहले ही अँधकारमयी गली में विलीन हो गया।

(२)

आये दिन यही प्रोग्राम रहा। कुत्ते को भी एक आदत-सी पड़ गई थी कि सड़क के बीच में डिक्टेटर की तरह आकर एक बार बीचोबीच आ खड़ा होता और जैसे जान-जानकर चिढ़ाने को रो देता। पण्डित श्रीनारायण को उससे चिढ़ हो गई थी। आठ बरस बाद उनके घर में बच्चा आया था सो भी जाता रहा। उस दिन अँधेरी रात थी, घटाएँ छा रही थीं, तभी आकर सहसा पहले दिन यह कुत्ता रो पड़ा था। बच्चा इस असगुन के कारण चल बसा और कुत्ते के सिर घर-भर का टूटा और लुटा दिल एक दुश्मनी लेकर मँढ़ गया। कुत्ता भी अपने रोज़मर्रा के दुश्मनों को पहचान गया था और उनकी थोड़ी भी आहट पाते ही दौड़कर गली में छिप जाता।

उस दिन चौराहे पर सिपाही नहीं था और ट्राफ़िक भी कुछ कम था। कुछ लोग आग जलाये ताप रहे थे। कुत्ता रोते-रोते उनके पास चला गया। किसी ने भी कुछ न कहा। भले आदमी नाराज़ होकर भी शर्माते-से चुपचाप चले गये। कुत्ता धीरे-धीरे पास के घूरे पर जाकर सो गया। रात हो आई थी। अगणित तारे आसमान में जलते अरमान लिये अपनी ज़िन्दगी की कशमकश में अपने को सँभाले घूम रहे थे। आग से चारों ओर हिलती हुई रोशनी फैल रही थी। धूआँ आसमान को गहरा बनाये जा रहा था।

इसी समय लोगों ने देखा, पण्डितजी ज़ोर-शोर से चले आ रहे

थे। हाथ में एक लम्बा डण्डा था। लोग समझ गये, आज पण्डितजी गजब करने ही घर से निकले हैं। बहुत-से लोग स्वयं ही कुत्ते से नाराज थे, मगर अगुआ बनकर उसे मारने की हिम्मत कोई न करता था। आज कुत्ते को मारने को एक आदमी को देख कुछ तो चुप से अपना काम करने लगे, कुछ उत्कण्ठित-से देखने लगे। हरा पेड़ काटने का साहस बहुत कम करते हैं, मगर पेड़ की कटी लकड़ी ले जाने को सब तैयार होते हैं। आग के पास बैठे लोगों के निकट जाकर सीधे शब्दों में पण्डितजी ने पूछा—कहाँ गया साला? उसकी ऐसी-तैसी! मजाक हो गया? तुम लोगों ने इस आदमखाने को श्मशान-सा बना रखा है!

युवक मजदूर उद्दण्ड-से निश्चिंत बैठे तापते रहे। उनकी भुजाएँ कन्धों से कुछ उठ गईं। नई रेल को देखकर जैसे हिंदुस्तानी चौंककर उसे देवता मानने लगे थे वैसे ही वृद्ध चिरञ्जी छाती निकालकर नम्रता से बोला—'सर्कार बाबू! खबर नहीं।'

पण्डितजी को कुछ नहीं सूझा और वे चुपचाप घर लौट आये।

आधी रात को कुत्ता फिर सड़क पर रो उठा। पण्डितजी की नींद खुल गई।

(३)

दूसरे दिन पण्डितजी ने चुङ्गी में अर्जी दे दी और कुत्तों को गोली डालने भङ्गी आ गये। जब कोई कुत्ता न फँसा तो पण्डितजी स्वयं कुत्तों के लिए बाहर निकल आये। बाहर आते ही उन्हें भङ्गियों ने घेर लिया। आज उन्हें इसकी भी परवाह नहीं थी। ब्राह्मण स्वार्थ के सामने धर्म को अपने अनुकूल बना लेता है।

जमादार ने पण्डितजी को देखकर कहा—सलाम पाण्डतजी।

पण्डितजी ने धीरे से कहा—जियो-जियो।

सहसा भङ्गियों ने जोर से कहा—सलाम ठाकुरजी।

पण्डितजी के मुँह पर मुस्कराहट फैल गई।

साँझ आ गई, मगर कुत्ते पकड़ने की गाड़ी में एक भी कुत्ता नहीं घुसा। सबको ग़रीब अशिक्षितों ने अपने घरों में बन्द कर रखा था

जैसे गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में मर्दुमशुमारी ग़लत कराने को घरों में लोगों को छिपा दिया गया था। पण्डितजी ने चिरञ्जी को लाल नयनों से देखा। सामने के किसी घर के पिछवाड़े से कुत्ते भूँक पड़े और जमादार ने रिपोर्ट में लिखा—'कोई कुत्ता सड़क पर न दिखा। बढ़ती तादाद की ग़लत रिपोर्ट दी गई लगती है। कुत्ते कहीं हैं जो भूँकते हैं, आवाज़ आती है, लेकिन हैं कहाँ, यह पता नहीं चलता।'

एक सूखा-साखा मरियल कुत्ता सामने चल रहा था, मगर उसके गले में किसी ने अपना कपड़ा बाँध दिया था, जो पट्टे का काम दे रहा था। पण्डितजी मन मसोसकर रह गये। उन्होंने पहचाना, यह चिरञ्जी की साफ़ी की चीर थी। कुत्ता लाट साहब बना हुआ था। माँग में सिंदूर पड़ा, स्त्री को खाने-कमाने की चिंता नहीं रही, गले में चीर पड़ी, कुत्ता आवारा न रहकर घर का सदस्य हो गया। बाक़ायदा सड़क पर चहलक़दमी कर रहा था, बल्कि एक-आध बार पण्डितजी को सूँघ भी गया।

सभा विसर्जित होने ही वाली थी कि एक मोटी कुतिया निकल ही आई। वह किसी की सम्पत्ति नहीं थी। भङ्गी ने प्रेम से बढ़कर गोल डाली और कुतिया उसे निगल गई। लोग चुपचाप देखते रहे। उन्होंने आदमियों को घोड़ों से कुचले जाते देखा था, फिर यह तो मामूली बात थी। उन्हें इस सरकार से बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं। भङ्गियों ने मौज में कुतिया को ले जाना भी व्यर्थ समझा। खाली गाड़ी धकेलकर दफ़्तर की तरफ़ गाते हुए ले चल पड़े।

रात ठण्डी-सी इठलाकर ठहर गई। कुतिया के पेट में बच्चे थे। यही दुर्भाग्य की बात निकली। रात-भर झाग डालकर कुतिया अनगिनत रोते कुत्तों के बीच में चल बसी।

दूसरे दिन किसी ने भी यह न कोसा कि कुत्ते रात-भर रोये। सफ़ेद कपड़े पहने बूढ़ी खत्रानियाँ बतख की चाल से मन्दिर में जब मिलीं तब एक ने हाथ मटकाकर कहा—बनने को पण्डित, काम ऐसे ? ? ग्याभन मरवा दी तभी तो विसका लड़का......

पास की बुढ़िया ने कहा—ठीक है बूआ, ठीक है।

पहली वृद्धा ने फिर कहा—तौ मैंने क्या गलत कया? हत्या करावै है! हत्या!

तीसरी ने कहा—हम तो बस जे जानैं, जो जैसी करनी करैगा, तैसी पायेगा।

पण्डितजी इस अकृतज्ञ मुहल्ले की सेवा से ऊब उठे। अजब कुतिया मरी।

कुत्ते रात-रात रोने लगे। और वह असली तक्षक अभी तक ज़िंदा था। पहले मारते थे, अब वह भी नहीं कर सकते। कानों में उँगली डालकर बैठ रहे। मुहल्ले की स्त्रियों में एक राजनीति की-सी हलचल व्यापी रही। स्वयं उनकी स्त्री ने कहा—मैंने तो पहले ही मना किया......

मगर फिर वह पण्डितजी की आँखों के आगे बोल न सकी।

दिन बीत गये। मामला ठण्डा पड़ गया, लेकिन पण्डितजी पर से लोगों की श्रद्धा उठ गई और रात में कुत्तों के भूँकने से बहुतों की नींद ख़राब होने लगी। फिर भी कोई रास्ता नहीं था।

लोग कहते—इतना मोटा-तगड़ा होकर सिर्फ़ रोता है?

और कुत्ता भूँक पड़ता, मानों एक प्रश्न था कि क्या रोने के लिए भी आज्ञा चाहिए? कौन जानता है, किसको क्या दुःख है? तब सड़क की धूल उड़ जाती, मानों उत्तर था कि दुःखों को आकर कहो मत। यह किसने कहा कि सब तुम्हारे दुःख के साथी होंगे?

फिर घूरे पर से उठ पूँछ दबाये अन्य कुत्तों में डरता-सा वही कुत्ता रो उठता। सब आवाज़ों से ऊपर ईश्वर की आवाज़ की तरह उसका गम्भीर निर्घोष गूँज उठता और मुहल्ला स्वर से भर जाता।

(४)

जाड़े की धूप किसी के ठण्डे गाल पर बहे गर्म आँसू-सी बहकर फल गई। अपनी गौख में धूप में बैठे पण्डितजी भगवद्-गीता पढ़ रहे थे। सहसा उन्होंने दिन में कुत्ते का रोना सुना। वे अन्दर-ही-

अन्दर झुलस उठे। साथ ही उन्होंने देखा दस-पाँच मेहतर लट्ठ लिये कुत्ते के पीछे दौड़े चले आ रहे थे। क्षण-भर में ही कुत्ते के सिर, बदन, पूँछ, टाँग सब पर दनादन लट्ठ पड़ने लगे। पण्डितजी इस मार का कारण नहीं समझ सके, किन्तु मार जारी थी। जब कुत्ते की आँखें बाहर निकल पड़ीं तब उसे नाली में फेंक, लट्ठ नचाते हुए मेहतर लौट गये। कुत्ता तड़पने लगा, ठण्ड से काँप भी रहा था। न जाने क्यों पण्डितजी व्यथित हो गये।

कुत्ते ने रोने के लिए अन्तिम बार मुँह खोला, मगर वह अबकी रो न सका। उसमें दम नहीं बचा था।

आवारा

(१)

भठियारख़ाने के दालान में भीड़ जमा थी। रफ़ीक सोचता था—कौन किसे तङ्ग करता है! कौन किसे मुँह लगाता है?

'कैसे?' कहकर हमीदा ने चिलम बढ़ा दी।

'तू पूछता है, कैसे? मेरी जान की कुछ खबर है तुझे? तन देख! मेरे जिस्म में दरारें पड़ गई हैं। और आज शाम हो चली है? आखिर भलमनसाहत भी कोई चीज़ ही तो है?'

'ठहरके बातचीत कीना करो भाई सा'ब', वह खाँस उठा। 'क्यों नहीं? क्यों नहीं?' सबकी आवाज़ अँधेरे को गुँजा उठी। पर तारे नहीं सुन सकते।

'हम ना होते, तुम ना होते,
कौन कहाँ से आवत रे?'

'शायद काल्लू आ रहा है?'

'हाँ, मैं ही हूँ भाई-जान!'

'सोई तो मैंने कया। आवाज भी नहीं पहचानूँगा क्या मैं दर्दे-जिगर की दवा की!'

'अबे नहीं, मेरी क़सम?'

और एक और आ पहुँचा। यह आवारों का एक झुट्ट बैठा है।

'अबे, तो आज तेरे मुँह से खुसबू क्यों नी आरी है यार? कहीं उझकके चक्के-फक्के तो नहीं झाँस गया?'

'मर गये!' बोला वह काल्लू, 'यह देख, मेरी जेब में क्या है?'

'तो दिल से सटाके रखे हुवे हो?'

'और नहीं? और बे रफ़ीक, तू कैसे भिनक रिया है आज दिन? क़िस्सा-फ़िस्सा तो नहीं कर दीना?'

'और भाई तू क्या जाने ? लो साँड़-सा डोलै है, न आगी, न पीछू; जहाँ मरे वहीं गड़ जिये। अमाँ, कुछ ध्यान दो! मजहब पै आओ! खुदा सबका वही है। और जो विसकी बनी लकीर मिटा दे विसे हम जानें। वह छाती ठोके, हम टाँग तले निकल जायें।'

'अबे चल, रहने दे, फिर मौके पै कहेगा, हमें तो मुर्गा बनना ही ना आवै।'

'हाँ तो......

'पहले मेरी सुन तो कहूँ।'

'अच्छा, जे तै रही, बोल ?'

'तो मैं यों कहूँ कि मजहब धरम क्या होवें साले ?'

'ऐ लो! सुन ली भई, कुछ आगे कहूँ क्या ? तबियत भर गई कि नहीं भाई सा'ब ?'

इतने में चन्दा बोल उठा—अमैं, हटाओ भी कोल्हू के बैलो! रट लगा दी! यह ले यार काल्लू, दम खींच।'

'दम ? बढ़ा-बढ़ा इधर' और काल्लू दम मारने लगा। और क्षण-भर बाद ही बोल उठा—अबे वाह बे उल्लू के पठेरे! यह भी कोई दम में दम कहावे है ?'

और जेबसे निकाल खोल पुड़िया बढ़ा ही दी सुलफ़े की, हाथों-हाथ।

'यारो जिंदगी जीने का मजा है। क्या मिलेगा बीबी-बच्चों को ? भरम है धरम-वरम। खाओ, पियो और कहो कि जो मजा है मस्ती है; हस्ती और दौलत के शिकंजे ग़म की दीवारें हैं। न लेना, न देना। तुम सब गुलाम, हम आज़ाद हैं। नौकरी करोगे, जान जोखों पड़ेगी। करो मजूरी और मालिक भी मिन्टों में पैरों का तेल बन गया कि रखो-रखो, अल्लाह-अल्लाह और नहीं खैरसल्लाह! मानों तो सालों, अम्मा भी भर-भर दूध पिलायेगी। मर्द मर्द, औरत औरत सबका बेड़ा चलेगा। बोल कैसी कही ? कल शाम से घुटवाऊँ ? बूता है बाबू सा'ब, बूता है। खूब छानो, लगाओ दम, और जिसका दिमाग हो ठीक, आके बगल में हमारे पिया करे। कसम से कहो जवानी तो हरजाई, हम तो हमेशा जवान

हैं। औरत जवान दस बच्चोंवाली, और मरद जवान तब तक जब तक वह मरद है। मियाँ दिल चाहिए, दिल ?'

और फिर काल्लू हँसा, उसकी हँसी में सब डूब चले।

'क्या मिलेगा काल्लू ? बुढ़ापे में क्या करोगे ?'

'और नहीं, तुम तो कमा-कमाके बचा रहे हो न ? इतना ही कि बुढ़ापे में जब कुवँर कन्हैया सामने खेलेंगे तब सोने के पलना ही बिछवाओगे ? अरे बोतल हो और हो सामने माशूक, लौंडिया नहीं तो लौंडा ही सही। अमाँ, हुस्न और दौलत दो ही चीज़ हैं। एक तो पाओ, और जिनने दोनों पा लीं।'

क्षण-भर ठिठककर उसने देखा। फिर दबी जबान से बोला—होंगे रईस घर के अपने, बेटा, एक-एक बिस्तर एक-एक जागीर है, एक-एक माशूक एक-एक खुदा है। तुम्हारी क़सम, फुरकत के मजे ही कुछ और हैं। तुमने तो सिर्फ जूतियाँ खाना सीखा है। और मुझे देखो ! है ?'

और वह दम खींचने लगा। अब शायद वाक़ई मजा आ रहा था। जो चिलम जल उठी थी उसे पीकर जो एक दिलक़श धूआँ गुबारों को पैदा कर रहा था वह फैल उठा। रफ़ीक ध्यान में था। उसका मुख भारी था। साँझ के जाने के साथ ही वह अपनी ग्लानि को भी चाहता था कि वह जहाँ से आई है वहीं चली जाये। लेकिन इससे पहले कि वह लौटे, मिल के फ़ाटक बंद हो चुके थे। वह बेकार पिटा, रोगन छूटे-न-छूटे, वह क्या करे ? बड़े आदमी हैं जी, बढ़-चढ़के बातें बनाना क्या उन्हीं के लिए सीखा है ?

वह गर्मी की ऋतु थी। चाँद क्षीण-सा आसमान में चढ़ आया था। धुँधली भयद आशा-सी किरणें घुलघुल जा रही थीं। दूर न जाने कहाँ सल्मा-सितारों-से तारे जड़े थे। सामने की सफ़ेद डोरियाँ भागती बिल्ली की पीठ-सी चमक रही थीं।

अब्दुल कहने लगा—बिस दिन वो गंगू हलवाई गिट्टा-सा काला-सा है नी वो, बोला—मियाँजी, पैसे नहीं आये ! मैंने कया—तो क्या कोई चोर-

बदमाश हैं ? आ जायेंगे। मगर माने सो वह उल्लू का बच्चा। मैंने भी जिन्नातों के नुस्खे सीख रखे हैं। जान बचाई किसी तरियाँ।

हमीदा बोला—फिर कित्ते चलेंगे।

चंदा आगे होकर बोला—और साले ने लगाई चींचपाट तो बता न दूँगा यार ? बनिया-बक्काल, हहहह......मेरा गुस्सा बड़ा बिकट है, भैया, हहहह......

अब रफ़ीक की बारी आई। आगे सरककर कालू के सांझे में आ बैठा।

'उड़े न यार ?'

'क्यों नहीं !'

और कुछ ही देर में दोनों बोतल गटगट करके पी गये। कुछ हँसी, कुछ फ़ोश मज़ाक, कुछ हाथों और आँखों के अश्लील इशारे। नशा चढ़ने लगा, अँधेरा बढ़ने लगा। कालू में अब रफ़ीक है, और रफ़ीक में कालू। कालू और रफ़ीक तन्न हुए। और कालू की तान छिड़ उठी—

सरे बाजार बलमा......

झुट्ट जो दूर-दूर तक-सा था, सरक-सरककर पास आ गया। एक लाश थी, कई गिद्ध थे। पहली चोंच डालना मना था। सब चारों तरफ़ योगियों-से मौन बैठे थे। जब गीत ख़त्म हो गया तो अब्दुल कहने लगा—तो क्यों भाई रफ़ीक ! तूने फिर करियाँ अपना किस्सा सुनाने को कया था न ? फिर आज न चले कपड़ों पै तेरा गज़ ?

'मेरा गज़ ?' और भयंकर लुंगाड़ों के ठहाकों से वीभत्सा कुरूप हो उठी। न जाने आवारों के क्या-क्या मतलब भले आदमियों की एक-एक झिझकती आवाज़ में निकल आये।

रफ़ीक के दिल में धुकधुकी हो रही थी। सोचते-सोचते वह सिहर उठा।

'दिल मर गया क़सम से, दो संगी थे, एक बचा भी तो यार, अध-मुआ होके। बला लगी न उस्ताद ? मरे दिल, मगर बदन को तो पेट की खातिर सलामी झुकानी ही होगी ?'

कालू सोचने की कोशिश कर रहा था, मगर नशे की अँगड़ाई खयालों के पैर ही नहीं जमने देती थी।

हमीदा ने मुँह में एक बीड़ी लगा आगे सरककर दियासलाई जलाई। अब इन लोगों के चेहरे नजर आने लगे। नाक, आँख और बाल ही इनकी विशेषता थी। किसी के गर्दन तक लहराते घुँघराले बाल और किसी के पट्टे धँसके हुए गालों पर फब रहे थे। कोई फटा पजामा और कोई तहमद पहने था।

'अब नशा करना हम जानते हैं, हम', कालू कहने लगा, 'बोलो, कौन चलेगा? कौन होगा हमारा चेला। वह-वह चाट उड़वाऊँ बेट्टा; इन आँखों की रोशनी यों ही नहीं पकाई है। जो सूरज की रोशनी में भी बंद नहीं होने की, समझे?' और हाथों से उसने एक अजीब अश्लील इशारा किया जो घृणित और घोर वासना से भरा था।

'यहाँ क्या मिलेगा उन्हें......'

और फिर निःस्तब्धता में भी उनके मुख से एक हँसी की क्षीण ध्वनि कूक उठी।

रफ़ीक ने कहा—उस्ताद हो तुम हमारी पार्टी के। तुम मिल गये राजा, इतने दिनों के बाद हमें। इसी तरियें बैठक जमेगी कल से। ठीक है वे हमीदा?

'बिलकुल।'

'और क्या?' बोला चंदा लपकके 'इतना भी नहीं किया तो किया क्या फिर बोलो?'

'हाँ, तो क्या तय रही?'

'वा' बे जोरू के घुँघरू', कहकर रफ़ीक उठा। उस पर काफ़ी नशा चढ़ आया था। वह गाने लगा—

ओ मेरे राजा......

और अट्टहासों से आकाश गरजता-गरजता गूँज उठा। मगर यह वह हँसी थी जिसका छोर बढ़ता चला जाता था। हर कोई अपने को बेक़ुसूर समझे हुए था। मानों शोर अपने आप कहीं से उठ रहा हो।

जब इस तरह काफ़ी देर हो गई तो मज़ा जाता रहा। अब आनंद की जगह चिड़चिड़ापन ले रहा था। इतने में उस ओर अँधेरे में बढ़ता एक आदमी वहाँ आ गया। लोग उसे देखकर चौंके, पर फिर सबने एक नया साहस इकट्ठा कर लिया।

वह आगंतुक बोला—सालो! मेरे पड़ोस में ये गुल? अँतड़ियों की धज्जी-धज्जी उड़वा दूँगा मरदूदो, मैं सरकारी आदमी हूँ। हरामी...

वह और बकनेवाला था, मगर सुलेमान जो कि भटियारख़ाने का मालिक था, आगे बढ़कर बोला—जमादार, यह ही दो पैसे रोज़ की आमदनी है। यह सब बाहर के लोग हैं। पैर छूता हूँ जमादार, अब अगर ऐसा फिर कभी होवे तो......

जमादार ने जाने क्यों चुप रहना ही बेहतरीन समझा, क्योंकि इस वक्त गुण्डे उसकी तरफ़ जलती आँखों से घूर रहे थे। लेकिन फिर बोला—रहेंगे मेरे पड़ोस में; और करेंगे हरामी अपनी वही बदमाशी!'

काल्लू उठा। उठते में लड़खड़ाया। जमादार के ठीक सिर पर जा खड़ा हुआ। घूँसा तानने लगा। मगर सहसा मुँह देखकर चिल्ला उठा—अबे, ये तो साला बुड्ढा है। मार दूँगा तो मर जायेगा।

एक अजीब नया शोर मच उठा। सुलेमान हर कोशिश करता था, मगर कौन माने? आख़िर जमादार चला गया। वह चुङ्गी में भंगियों का कभी जमादार था। अब पेंशन पाता था। ऐसा वाक़या कोई नई बात न थी। जब शोर से गुण्डे थक गये तो काल्लू बोला—रफ़ीक!

'हाँ भई, उस्ताद?'

'चल, बाजार हो आयें।'

'हाँ, राजा!'

इन दोनों के जाते ही भीड़ छँट गई। रह गये सुलेमान, हमीदा, चन्दा और अब्दुल। सुलेमान ने आँख मारी और हमीदा बगल की कोठरी का दरवाज़ा खटखटा उठा। सुलेमान उठकर बाहर चला। अब्दुल बोला—लो। ये दो और एक तीन रुपये। हमने चंदा किया है! मामूली नहीं चाहिए।

'एक नम्बर।' कहकर सुलेमान चला गया। थोड़ी देर बाद दरवाज़ा खुला। भीतर मद्धिम रोशनी थी। हमीदा ने अपने दोस्तों की तरफ़ देखा, आंखों में स्वीकृति मिली। घुसकर द्वार बन्द कर लिया। बाकी दोनों खामोश गिद्धों की तरह बैठे रहे। कुछ देर बाद जब हमीदा निकला तो बोला—तुममें से एक जाओ।

अब्दुल बोला—कैसी है यार?

हमीदा हल्के से मुस्करा दिया। अब्दुल भीतर घुस चुका था।

(२)

रफ़ीक के लम्बे-लम्बे घुँघराले बाल कन्धे तक फहराते थे। एक तेली सच्चा दोस्त था। इसीलिए एक दूसरे की दोस्ती से फ़ायदा उठाना भी लाज़मी हो गया था। रफ़ीक जाते हैं। तेली दोस्त अँधेरी-सी गली में से चीख पड़ते हैं—आओ बर्ख़ुरदार, आओ बादशा...। रफ़ीक हाथ में एक साबुन की बट्टी लिये हुए हैं। अब तेली दोस्त फ़कीरा उनके सिर पर तेल डालकर मालिश करता है और रफ़ीक अपनी बलिष्ठ देह को साधे अपने हरे तहमद को देख-देखकर गुनगुनाते हैं—

हसरत उन गुंचों पै है
जा बिन खिले मुरझा गये।

जब सिर चमक उठता है तो वह अँधेरी कोठरी में से एक टूटी मटकी निकाल लाता है और हाथ डालने पर एक दाँत टूटी बूढ़ी कंघी निकल आती है। कंघी का रखना एक आवश्यक कार्य है, क्योंकि सब भले आदमी बाल काढ़ते हैं। जब फ़कीरा बाल काढ़ चुकता है तो रफ़ीक कहता है— 'ले, हाथ तो धो ले। और साबुन की बट्टी बढ़ाते हुए और कहता है—यह जाने कितने गन्दे बाल हैं!

ऐसे बाल और चौड़ा सीना। गलमुच्छें और एक बनियान ढीली-ढाली। हाथ में और गले में एक-एक काला डोरा। वह अक्सर बाज़ार से जो गली के नुक्कड़ पर नल है वहाँ नहाता, चिल्ला-चिल्लाकर गाता और ऊपर अगर कोई तवायफ़ दीखती तो आवाज़ें कसता चिल्ला-चिल्लाकर गाने गाता। चाय के प्याले धो-धोकर टाँगता हुआ

सामने की दूकान से बदरुद्दीन कहता—क्या कहने हैं उस्ताद के ! और रफ़ीक—डू ! बे. डी है बे का घोर नाद करता, जिसको सुनकर आस-पास के दूकानदार खूब हँसते, तवायफ़ें गोखों में बाहर निकल आतीं और लाज करतीं जिसको देखकर रफ़ीक का बदन फड़कने लगता।

रात के साढ़े नौ बजे का वक्त था। काल्लू एक रेशमी कुर्त्ता और धोती पहने था। यह देखने को तगड़ा तो नहीं मालूम देता था, मगर था अव्वल दर्जे का फुर्तीला और ठग। बाज़ार जगमग कर रहा था। भीड़-भड़क्का, घोड़ा और गाड़ी। दोनों पीकर मस्त हो रहे थे।

अब कोठे चमक रहे थे।

'अबे, चलै है बे काल्लू ?' रफ़ीक ने झूमते हुए कहा।

काल्लू सहसा तबले की ठनक सुनकर चौंक उठा। तड़पकर बोला—साले, तेरे बाप के पास भी इतना नामा है ?

ऊपर क़हक़हा लगा। काल्लू और रफ़ीक आगे बढ़ गये। यह दूसरे बाज़ार की तरफ़ सड़क गई थी। सँकरी-सी सड़क, मद्धिम-सी रोशनी। बाहर निकली हुई गोखें और उनमें बैठी हुई रंडियाँ। हर कोठे पर चढ़ने का सीढ़ी की बगल में ही एक-एक दूकान है। और ये दूकानें एक अड्डा हैं। इन्हीं में से एक दूकान पर जाकर काल्लू चीखा—अबे लल्लन, आ साले लल्लन !

दूकानदार जो कि पीनक में पड़ा था, बोला—आओ जानी ! आहा ! काल्लू मास्टर हैं ? आ जाओ राजा, भीतर आ जाओ, भीतर, डरो मत !

'वाह बे !' काल्लू ने कहा—दिन-दहाड़े सो रहा है ? आख़िर कुछ तेरी दौलत मारी गई क्या ?

'अजी नहीं उस्ताद ! आज वह ढब-ढब का मैच हुआ था न ट्रेनिंग कॉलिज की फिल्ट पर, सो मैं वहीं गया 'वा था। अब तुम जानो इत्ता जाना, त्रित्ता ही आना, मैच देखे बिगेर भी कैसे रहता ? दूकान बढ़ा दी थी शाम से पहले ही, अब जब लौटा तो मुन्नी बाई ने पानों के लिए दूकान खुलवा ही ली। ख़ैर ! मगर तुम तो बैठो।'

काल्लू अपने ही ख़याल में था। रफ़ीक को कुछ नहीं मालूम। नशा

पूरा चढ़ चुका था। वह धीरे से जाकर दूकान पर लेट गया। कालू बोला—अबे रफ़ीक, चलता है कि नहीं?

ललन ने इशारा किया—सो रहा है।

कालू चिढ़ गया। 'साला हिजड़ा है। जरा-सी पीकर लेट गया।' फिर बोला—मुन्नी ने अबके कौन-सा कोठा लिया है? हरामजादी कहाँ चली गई थी? निकाह करेगी, निकाह।' और वह ठठाकर हँस पड़ा।

ललन बोला—धीरे उस्ताद, धीरे। ऊपर रामू पहलवान बैठा है। एक आदमी और है उसके साथ।

पलक मारते कालू जोर-जोर से रामू पहलवान और उसके साथी को माँ, बहिन, बेटी, बाप, भाई सबकी पचीसों गाली दे गया। गाली देता जाता था और देते-देते में गढ़ता भी जाता था। गालियाँ सुनकर एक आदमी गौख पर निकल आया। उसके साथ थी एक निम्नश्रेणी की वेश्या, कुछ विश्रांत-सी। चहल-पहल हो रही थी। कोठे पर का जवान कालू को देखकर सलामी झुकाकर बोला—तस्लीमात, मिजाज तो अच्छे हैं?

कालू शाहिस्ता होकर बोला—इनायत है आपकी। दुआ है आपकी सरकार! हम किस लायक हैं? कहिए, मैं आपकी क्या ख़िदमत कर सकता हूँ?

अब ऊपर से पतली-सी आवाज़ आई। मुन्नी बोली—कहिए, कुछ नाराज़ हैं क्या?

रामू अब ठठाकर हँस पड़ा। पास में सड़क पर सिपाही घूम रहा था। ये लोग सिपाही के दोस्त थे। यही वह जगह थी जहाँ सम्राट् दरिद्रों में आ जाते हैं। कालू बोला—बेट्टा, आज अकड़ रहे हो? यह याद नहीं है कि जिस ओहदे पर तुम आज पहुँचे हुए हो, विस पर तुम्हें पहुँचाया किसने है; जिस प्याले पर तुम साले हरामखोर मुँह लगाये हुए हो वह मालूम है, मेरी जूठन है? और वह ठठाकर हँस पड़ा। सिपाही इधर-उधर घूमने लगा। ललन ऊँघ रहा था। रामू बोला—'क्यों रामा, चढ़ाये हुए हो क्या?'

'अबे चढ़ाये हो तेरी माँ'......कालू को यह भी मालूम न पड़ा कि कोठे पर से कोई उतरा, वह कहता गया—'बेट्टा, भले आदमी बनकर रहो, नमक माना करो, नमक !'

ऊपरवाला अखाड़े का पहलवान चिल्ला उठा—'बज्जो सरजा ! बज्जो सरजा !!' और जैसे बिजली गिरी हो, कालू पर तड़ातड़ लट्ठ बज उठे। जितनी देर में सिपाही होश सँभाले, लुच्चे गलियों में भागकर ग़ायब हो चुके थे। केवल बेहोश घायल कालू पड़ा हुआ था। रफ़ीक नशे में बेहोश था। रामू नीचे उतर आया। देखकर हँसा और फिर उठकर चला कलिया ताँगेवाले के तबेले की तरफ़। चिल्लाकर बोला—जागता है बे कलिया !

'हाँ।' कलिया ने ऐंठकर बुड़बुड़ाते हुए कहा—क्या है ?

'ताँगा जोत, मैंने कहा। कालू बेहोश है। अस्पताल ले चलना है।'

'अच्छा।' और वह बुड़बुड़ाता रहा। और वे अस्पताल पहुँच गये।

रामू ताँगे में बैठकर लौट आया और कहीं गायब हो गया।

घंटे-भर बाद पट्टी-बट्टी बँधवाकर कालू ने जाकर सब्ज़ी मंडी पर पानी पिया और काश्मीरी बाज़ार की तरफ़ चल दिया। गर्मी के दिन थे। अभी रात कमसिन थी। इसलिए सड़क पर लोग निस्संकोच चल रहे थे। कुछ ही दूर चलकर कालू गरज उठा—'कलिया बे ?'

'क्या है ?' कलिया ने मुड़कर कहा।

'रोक ले !'

ताँगा रुक गया।

दो आदमी उतर पड़े। एक रामू, एक उसका साथी। कालू बोला—जा, लल्लन से मेरी लकड़ी और दो और डंडे ले आ।

क़रीब दस मिनट बाद युद्ध हुआ। कालू ने पहले डटकर गाली दी कि पीछे से मार गये साले! बदमाश ! कायर! और एकदम शाइस्ता होकर बोला—आप लोगों को इसके लिए मेहरबानी है भाईजान। और उसने पट्टी की तरफ़ इशारा किया। छोटा डंडा उसको नियामत थी। हाथ-भर का डंडा लेकर वह सामने दोनों गुंडों के हाथ में लंबे-लंबे डंडे

देकर तैयार था। सड़क साफ हो गई थी। अब लकड़ी चली। लोग चारों तरफ़ जगह छोड़कर खड़े हो गये थे। पूरे युद्ध में कालू दो डंडे कमर पर खा गया और आधे घण्टे में वे दोनों सामने ही गिर पड़े। कालू भाग गया। लोग चलने लगे।

दूसरे दिन कालू खाना खा रहा था। दरोग़ाजी आ पहुँचे। उन्हें उसका घर मालूम रखना पड़ता था। कालू उस समय एक लड़के से कह रहा था—अब वे दिन कहाँ रहे? हमारे उस्ताद थे पूरे शाहंशाह। रईसों की उनकी उठक-बैठक थी। ऐसे रईस नहीं कि दो आने का तेल सिर में डाला, दो लफ़्ज अङ्ग्रेजी के रटे और हो गये बाबू। हमारे उस्ताद ने खड़े-खड़े सराफा लुटवा दिया और एक पैसा न लिया। उन्हें कोठों पर से बुलाती थीं, वे कभी नहीं गये, हुआ तो नीचे खड़े-खड़े गाना सुना और जुआ कराया तो हज़ारों का, मगर नाल का रुपया अपने अखाड़ेवालों को बाँट दिया, वह बात और थी।

कालू एक पानवाले का बेटा था। माँ मर चुकी थी। एक बहिन थी। बाप रोज़ सुबह-शाम भाँग पीता। लड़का सोहबत में पड़ गया। बाप ने किवाड़ उड़का दिये। लड़के ने पहले तो उसे मारा और घर छोड़ दिया। एक बुढ़िया को काकी बना लिया। धोखा देकर उसके रुपये मार दिये और जब बुढ़िया मर गई तो विमान निकलवाया, फूल सोरों भिजवाये, बाभन जिंवाये और फिर चौकी करा दी। फिर फक्कड़ हो गया। जूआ खेलना शुरू किया। खूब हारा। दो बार पकड़ा जाकर जेल की हवा खा आया। एक दफ़े बाप ने आकर पैरों पर सिर रखकर कहा—एक ही बहिन है तेरी, उसका ब्याह करना है, तो बाप को धक्का देकर निकाल दिया, लेकिन रात को न जाने कहाँ से रुपया लेकर पहुँचा और बाप ने जब मुँह पर थूक दिया तो पैरों पर सिर रखकर रुपया दे दिया। बहिन का ब्याह हो गया। अच्छा घर था। पटवारी का बेटा, मिडिल पास। और बाप फिर पान की दूकान पर जा बैठा। बेटा हर पन्द्रह दिन बाद घर बदलता रहता।

दारोग़ाजी ने आवाज़ दी—पण्डितजी!

कालू ने लड़के से कहा—देख तो बे। कौन है ?

लड़के ने आकर कहा—दारोग़ा है। दामोदर सिंह।

'ले आ ! ले आ !'

दारोग़ाजी भीतर आ गये।

'आज्ञा महाराज', कालू ने कहा—आओ पहले खाना खा लो।

दारोग़ाजी खाना खाने लगे। जब खा चुके तो बोले—पण्डितजी ! आपको कोतवाल साहब ने याद फ़रमाया है।

'आप मुझे गिरफ्तार करेंगे ?' कालू ने पानी पीते हुए पूछा।

'जी नहीं, सिर्फ याद किया है।'

'तो चलिए।'

कोतवाल साहब ने तपाक से हाथ मिलाया। बोले—पण्डितजी, आप शरीफ़ आदमी हैं। क्यों इन गुण्डों के मुँह लगते हैं ?

'जी हाँ', कालू बोला—मैं भी यही सोचता हूँ। मगर देखिए।—उसने पट्टी खोल दी। 'कायरों ने पीछे से हमला किया और सच कहता हूँ कोतवाल साहब, सालों का कोई जोड़ नहीं बचा है जो टूटा न हो। अंग-अंग ढीले हो गये हैं। कोतवाल साहब ठठाकर हँसे। हाथ मिले और कालू लौट आया। लौटते वक्त उसने सुना, कोतवाल साहब गरज रहे थे—'सालो, अगर शहर कोतवाल बदमाश और उल्लू का पट्ठा है, तो फिर शरीफ़ कौन है ?'

दस क़दम चला ही था कि देखा, सामने से रफ़ीक आ रहा है। कालू हँसा और गले मिल बोला—अबे, कल रात सो गया तू ?

रफ़ीक की नज़र पट्टी पर पड़ी। बोला—यह क्या उस्ताद ? किसने किया यह ? मुझे बताओ। खून पी लूँ साले का।

इतने में एक छटा-छटाया गुण्डा आकर कालू से कुछ कह गया। दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। रफ़ीक ने चौंककर पूछा—तो तुम हो क्या उस्ताद ?

कालू मुस्करा उठा।

'मैं ?' वह बोला—मैं खुफ़िया पुलिस का सिपाही हूँ।

'तो बताया क्यों नहीं इतने दिन तक ?'

'कहना नहीं किसी से। छिपे रहने में मज़ा ही और है। और वैसे तो कपड़ों के नीचे सभी नंगे हैं।'

वह हँसा और रफ़ीक भी।

(३)

गर्मी बीत चली थी। दोपहर से ही बादल छा गये। सावन की काली-काली कस्तूरी-सी घटाएँ छहर उठती थीं। हरियाली यमुना की गहरे कछारों को ढँके हुए श्यामला-सी जगमगा रही थी। यमुना के गँदले गम्भीर बहते पानी में कोई बड़ी नैया खेती जा रही थी। उसमें से मल्लाहों का करुण किन्तु भारी स्वर—

अरे जुलुम की मस्ती छाई

दो-दो मन के बीच मनवाँ,

लहरियों को छूता पतवारों के कलरव में एक साम्य पैदा कर रहा था। दूर मरघट में किसी-किसी साधु की धूनी लपटें बिखराकर जल रही थी। कच्चा पथ जाकर जोगेसर महादेव के मन्दिर पर ठहरता था; इसके पीछे ही बस्ती थी। सेठों की बड़ी-बड़ी हवेलियाँ यहाँ सिर उठाये खड़ी थीं। सड़क गन्दी थी। किसी के नाम पर छोड़ा गया कोई साँड अपनी मर्ज़ी से मस्त कढ़ियल घूम रहा था। कोई मारवाड़िन गहनों से लदी सड़क के किनारे ही बैठी घूँघट काढ़े, मगर छाती खोले, बच्चे को दूध पिला रही थी। बनियान और धोती पहने बूरेवालों के यहाँ मैले-कुचैले मज़दूर 'हेइसा, हेइसा' का तुमुल साम्यमय शब्द गुँजाते बूरा कूट रहे थे। आगे से रंगीन लिपे घर, जिन पर लाल गेरू में जै शिव, तथा सदा सत्य बोलो, लिखा था, अपनी जँगलेदार गौखों की रंगीन चटक और बड़े फाटकों के कारण कुछ विचित्र लग रहे थे। दूकानों पर बैठे आदमियों का सबसे बड़ा भाग अधिकांश में उनकी तोंद है। बगल में ही लल्लन ने पान की चलती-फिरती दूकान ठेले पर लगाई है। बाँसों पर चीनी औरतों की अधनंगी तस्वीरें हैं और बीच-बीच में सिगरेट की पन्नी चिपकाई है। लाल कत्थे से रँगा कपड़ा बिलकुल गीला है जिस

पर दो बड़े चमकते पीतल के भगौने हैं। एक में केवल पानी है, दूसरे में पानी में डूबे हुए पान। यहाँ श्रीकृष्णजी की शेर पर बैठी तस्वीर है और चीरहरण का चित्र भद्दा और अश्लील होते हुए भी काफ़ी सजावट के साथ लटकती लालटेन के पास ही टँगा है।

गिलौरी लेकर काल्लू ने कहा—चलो बस, अब जोड़ बैठी ही होगी।

लल्लन, आज माथे पर चंदन लगा है जिसके, कत्थे की मोटी कूची फेरते हुए बोला—उस्ताज, यह साले रस्ते कित्ते गंदे हैं? कहने को सेठ है, मगर देखो तो गद्दी के साथ कैसी कीच है? अब चले क्या सौक करने?

झेंपते हुए चंदा ने कहा है—सौक-वौक क्या, जरा तफरी है। आज वो, विसका नाम दंगल है।

'और तैराकी का भी मेला है? बड़ी पिबलक है। ओफ्फो! क्या कहीं कुंभ लगेगा?'

'बिक्री के दिन हैं उस्ताद! यह गिलौरी, वह चवन्नी?'

'अजी', लल्लन ने ठंडी साँस भरके कहा—अब वह दिन कहाँ रहे? तुम्हारी जान की क़सम, जब से ब्याह किया है, सत्यानाश हो गया है। मगर अब वो मजे कहाँ कि बिन दिनों जीभ लजीज चीजों से तर थी, कानों से इतर की खुशबू की गमगमाट! अपनी वाई मुन्नी। अब तो कुछ सूरत उतर गई है विसकी। अच्छी थी बिचारी। हमसे तो उसने कुछ आसा नहीं की। अजो बखत-बखत का फेर है। बखत ही नहीं रहा तो क्या? आई-गई बात है। ब्याह हुआ था सा'ब हमारा। उस्ताज नहीं ही माने। ले गये हमें विसके घर। अरे देखा, तो उदास थी। पूछा कि तैने क्यों अच्छी-भली सूरत पै बट्टा लगा लिया? कह तो तुझे ऐसी फिकर क्या है? अजी—एक ही बात कही विसने। बोली—निकाह करनेवाली थी। मगर वो मुआ रुपया लेकर ही चम्पत हुआ। मैंने कया—तो क्या कोई बहुत बड़ी बात है। रुपया तो हाथ का मैल है भैया! फूल क्यों मुरझा गया? आँखें डबडबा आईं विसकी। बोली—तुम्हारा तो घर बस गया? अजी, म्हारे सर की कसम, मैं जानूँ औरत

के आँसू में कित्ता जोर होवै है? दिल टूक-टूक हो गया चंदा, टूक-टूक! मैंने कया— तू भोली है, दुनिया धोखेबाज है। जो सरीफ़ बनकर रहे भी तो उसे कौन रहने दे? 'राँड़ रँड़ापा तब काटै जब रँडुआ काटन देय।' वो, वोई दिखा दूँ तुम्हें, सेठ हरीमल ने रख छोड़ी है सो बेड़नी है। कोई चूँ तो कर जाये? मगर भैया, जे सब रुपये का खेल है। लाला गट्टूराम ने सट्टे में हज़ारों कमाये और कल विसका नाम लछमन की जोड़ में गिरफ़्तार कर लिया गया। इन्साफ तो दुनिया से उठ ही गया। मैंने विसे समझाया। कया—तू पुस्तैनी है। मैं जानूँ तेरे बराबर घर की बहू-बेटी न निकलेगी, मगर अपनी-अपनी तगदीर है। तगदीर पहली चीज़ है, पत्थर की लकीर है। समझी? क्या बिगड़ गया तेरा? मैं यों कहूँ भैया, कि क्या ये जलकटों के आँसू यों ही जायेंगे?

इसी समय पास में ही बड़ी ज़ोर से शंखध्वनि हुई। ध्वनि उठी और गूँज हवा में रह गई। उसके बाद तुमुल कोलाहल हो उठा। अब शंखध्वनि और कोलाहल दोनों साथ-साथ उठे। सागर की लहरों-सी बहती भीड़, गर्जन-सा कोलाहल। कालू और चन्दा उसी भीड़ में चल दिये।

अखाड़ों में जोड़ हो रहा था। कुश्ती डट रही थी। कालू ने देखा, किसी-किसी ठौर पर पढ़े-लिखे इस भीड़ में से कुश्ती की बानगी देख रहे थे। एक ओर शौक़ीन अफ़सर लोग बैठे थे।

काला पहलवान अड़ा हुआ था। पञ्जाबी पहलवान उछल रहा था। डटकर हो रही थी। ख़म ठोंकने की आवाज़ बीच-बीच में गूँज उठती थी।

एक अफ़सर कह रहा था—ज़िबिस्को और गामा की कुश्ती के सामने यह कोई चीज़ नहीं। मगर साहब देखिए, गँवारों और गुण्डों में कैसी चहल-पहल है?

दूसरे ने कहा—आप एक सङ्गीत-सम्मेलन कराइए और रात-भर बैठे रहिए, मजाल है, कोई भूले से भी आ जाये? हाँ, होने दीजिए रास या नौटङ्की, फिर देखिए।

इस बीच एक और ने कहा—ख़याल यह है गिल्ली-डण्डा, कबड्डी वगहरा को भी क्यों न बढ़ावा दिया जाये। आख़िर हैं तो यही अपने हिन्दुस्तानी खेल ?

बाबू लोग मुस्करा उठे।

काला पहलवान कुछ भी टस-से-मस नहीं हुआ था। कोलाहल बढ़ ही रहा था। मार दिया, उठा लिया, शाबाश आदि की चोट-भरी आवाज़ें गूँज उठती थीं।

'काला मार लेगा।'

'पञ्जाबी भी कम नहीं है। जोड़ बैठी है। याद है वो हुसनबानो ? औरत थी गजब की लड़ाका। सालिगराम को वह पछाड़ा था ..'

'अजी, भलो कहो। हमें सब खबर है। रुपया पहले दे देती थी। दूसरा आप-आप जानके पछड़ जाता था। देखा था कि नहीं, रामू ने दे मारा ? आनन-फानन, देर भी नहीं लगी। रो दी थी कि मूँड़ीकाटे, तेरे मुँह में कीड़े पड़ें ..'

'रुपया भी ले गया, दे गया दगा ? भई वह आदमी था .. '

बड़ी ज़ोर का कोलाहल उठा। पञ्जाबी ने काले को उठा लिया और हवा में घुमाने लगा। मगर काले ने गर्दन में अड़ान दी। पञ्जाबी गिरा। काले ने कैंची मारी। तपाक से बच गया। सनसनी फैल गई। पारा चढ़ने लगा। न जाने काले ने धीरे से कैसे एक बार घुटना मारा कि पञ्जाबी चित्त हो गया। कोई सैकड़ों आदमी अखाड़े में टूट पड़े। काला हाथों हाथ उठ गया। कलक्टर साहब ने रूमाल से मुँह पोंछा। आँखों से शाबाशी दी। पुलिस ने डण्डे मारकर भीड़ को पीछे हटाया। मुदा पञ्जाबी देह का ही भारी भरकम था। भला विसमें दम भी था ? काले ने चौंसठ अखाड़े किये हैं ! कोई मैदान हारा नहीं। बड़ा कप काले ने जीत लिया। अखाड़ा सर रहा।

काल्लू और चन्दा तितर-बितर होती भीड़ में चल दिये। यमुना के किनारे किधर-किधर हो गये। घाट-बेघाट घिर गये।

जुग्गी मिस्सर का जत्था तैराकी के लिए डङ्का बजाकर आया था।

बीरू तैराक पर उस्ताद को नाज़ था। वह कहा करते थे—जो बदन जवानी में मेरा था सोई कुछ-कुछ बीरू का है। पर तब जो खूराक हम खाते थे वह इस बेचारे को कहाँ मिलेगा? बड़ा सा'ब था, विसके बड़ी-बड़ी मूछें थीं। आजकल के जनखे अङ्गरेजों-सा नहीं। सेठ नन्हूमल पै बड़ा महरबान। जोड़ीदार बग्गी आती थी। विस पर भारी-भरकम थे, सो सेठ विसके सँग बैठा करते। हमें तो अपना बच्चा मानता था। सेठजी विसकी महर से रायसाहब हो गये। तुम्हारी कसम, जान तो हथेली पै थी। घी खाया, दूध पिया, दिन-भर तूँबी पर हाथ रहे। फिर तो तूँबा भी छाड़ दी थी। विधर बिसेसर, इधर जोगेसर। पाँच मील हैं, दा हाथ का रस्ता था। जवानी दिवानी थी। रग्गो खलीफा की सुपारी बँटी थी। खटीकों ने पगड़ी दी। रतजगा हुआ। रग्गो की टोली बड़ी गानेवाली। आया था चकमक करता वो सुनार का मनोहर। डटी रात-रात-भर। रग्गो ने जो बल खाके तान उठाई, भगत वैसी नहीं देखी। रग्गो मार ले गये। बिन रग्गो का हम पै साया था। घुटती थी जब दूधिया तब हमारा अगल हिस्सा। हम बिनके खासुलखासों में थे। अब देखें, बीरू कुछ नाम करै!

बीरू का बदन नज़र लग जाये ऐसा था। दूधवाले भोलू की बहू घूँघट में से उसे देख मुस्करा उठती थी। और एक दिन बोली—बड़ा ठांस दूध पिया है तुमने लालाजी? और हँसी। बीरू भोला-भाला, कुछ नहीं समझा। उस्ताद से आकर कहा तो उस्ताद सोचते रहे, फिर गरज उठे—खबरदार जो आज से वहाँ गया है! इन बच्चों के-से पुट्ठों पर ज़ालिम निगाह पड़ गई होगी चुड़ैल की। अबे देख, यह बदन भी ऐसे ही उजड़ा था। हमने अपने उस्ताद की नहीं मानी। पठान के सारे सिलाजीत धरे रह गये। बरबाद हो जाय ये सोने की काया। बदन का राजा बना रहे। बेटा, देख, उसकी बातों में न आइयो। मेरी बात मान, तेरे अखाड़े की मिट्टी चन्दन हो जायेगी। मगर भइया, ये ज़वानी है, बड़ों की कहन पै न चलोगे तो बसे-बसाये राज उजड़ जायेंगे।

और दूसरे दिन सुबह उठते ही उस्ताद ने बीरू का लँगोट देखा

और पीठ ठोंककर बोले—"बेटा, मेरा असीरबाद है। तू फतह करेगा। यह माया मृगनैनी है। मगर बचा रह। जाल है वो। बङ्गाले का जादूगर जो लँगड़ी साँड़नी पै आया था वह तक मार दिया था आनन्दी ने। तू तो अभी बच्चा है। कहीं किसी डायन की बिसैली आँख न पड़ जाये तुझ पर", और अपने हाथ से उसके गले में गंडा बाँधा था जिस पर जलालबुखारी के बूढ़े मजाविर ने तीन फूँक मारी थीं।

कालु उत्सुक था। आज उसी बीरू की बानगी देखनी थी। कल ही उस्ताद के एक नये पट्ठे ने वहाँ मरघट के पास जो छतरी है उसके तले बैठनेवाली पागल बुढ़िया के हाथ से छुआ तावीज उसके हाथ पर बाँधा था। उस छतरी के पास कोई नहीं जा सकता। मट्टा पहलवान ऐंठा था। जरा-जरा ही भूत ने छोड़ा। हरखू सुन आया था अपने कानों से, खम ठोंककर कोई टूट पड़ा। अब मट्टो हवा में हाथ-पैर चला रहे हैं। भूत ने कहा—जा, भाग जा, वर्ना तेरी भी एँड़ियाँ उल्टी कर दूँगा।

मट्टो दिलेर था। हनूमान चालिसा का जप करता-करता भागा। पुरानी छतरी है। अंगरेजो में उस पर कुछ लिखा भी है। एक बार दो आदमी पकड़े गये, पत्थर निकालते। कहते हैं, सरकार ने उन पर जुर्माना किया। बुढ़िया करामाती है। बैठी रहती है वहीं। और कोई पास नहीं जा सकता, ईटों के मारे सिर फोड़ दे। कइयों की खोपड़ी तड़ाक दी। बीरू की तो तक़दीर है जो विसके हाथ का छुआ मिला। कहा था, अब ले जा, देख, कहीं महरी का साया न पड़े।

पट्ठे ने गर्व से कहा—मैंने बचाके बाँधा है।

उस्ताद ने पीठ ठोंकी।

'नाम नहीं डूबे, समझे बेटा, जान चली जाये।' बीरू चुप रहा, मगर सीना गज-भर का लग रहा था। चेलों ने आँख फाड़कर देखा, मगर उस्ताद ने छाती चूमी और कहा—यों न देखो, कहीं मेरे छौने को तुम्हारी कड़ी नजर न लग जाये।

उधर से आवाज आई—नाईपुर के केड़े का भला। इधर से पुकार

हुई—उस्ताद के अखाड़े का पूरा। जोड़ बैठी। इधर बीरू, उधर रंझू। वह भी सुती देह का जवान। तूंबियों की भीड़ घिरी। दोनों ने पहले अपने-अपने उस्तादों के चरन छुए और पानी में उतर पड़े। पानी में दोनों ने हाथ मिलाये और तैरना शुरू किया। बड़ी भारी भीड़ थी। काल्लू देखता रहा। चन्दा भीड़ के कारण एक पेड़ पर चढ़ गया था। माँझियों का गीत उठता रहा। बीरू तीर-सा लग रहा था। वह भरी जमना, पिछड़ गया रंझू। उस्ताद ने आँखों को हथेली से ढाँककर, फिर माथे पर हाथ धरके देखा। पट्ठों से कहा—'लगे आवाज।' और पट्ठे चिल्लाये—उस्ताद के अखाड़े का पूरा। दूसरी आवाज उठी—जै जमना माता की।

बीरू लौट रहा था। अखाड़े की जीत रही। बीरू के कन्धों को चूमा। धोती पहनाकर बीरू के लँगोट को उतरवाया और खुद निचोड़कर एक पट्ठे के कन्धे पर धरा। फतह इनकी रही। उस्ताद का नाम हो गया। नाईपुरवालों का निशान छीन लिया। गजरों में लदे ढोल-ताशों के तुमुलरव में उस्ताद और बीरू का प्रायः एक जुलूस-सा लौटने लगा।

काल्लू भी चल पड़ा। गजब का शोर था। पूँजीवाला, फिरकी घुमाता, पीं पीं पीं मचा रहा था। और पापड़वाला मैले-कुचैले कपड़े पहने—पापड़वाला, पापड़वाला ऽऽ...चीख रहा था। बीरू को पट्ठे कंधों पर उठाये लिये जा रहे थे।

यह सर्वहारा का आनन्द-दिवस था। काल्लू और चन्दा प्रसन्न-मन लौट रहे थे। चन्दा बराबर बीरू की प्रशंसा के पुल बाँध रहा था। काल्लू हर्षित-सा सुनता रहा।

(४)

भठियारखाने की भीतरी कोठरी में एक मन्दा दिया जल रहा था। उसकी लौ हिल रही थी और दीवारों पर सामने बैठे हुओं की वीभत्स छाया खेल रही थी। काल्लू के सामने बोतल रखी थी। वह कह रहा

था—ग्वालियर के भयानक खड्ड, जिसमें फौजों की फौजें छिप सकती हैं विसमें रहता था वह डाकू।

रफ़ीक ने पूछा—वही पटियालेवाले बीरू-सलारू?

'वोई,' कालु ने कहा—वोई। सरकार ने एक-एक हजार का इनाम निकाला था। फिर दो किया, फिर तीन किया। पाँच खून किये थे बीरू ने, सात सलारू ने। बस बनियों को लूटना, गरीबों को बाँटना। बेण्या रियासत है छोटी-सी, वाँ का साहू एक मारवाड़ी है, विसै लूटा। गाँव के ठाकुरों की जमीन कर्ज में दबा-दबाकर, कलट्टर को रिश्वत दे-देकर साहू सिरमौर हो गया था विसका नाम। दो दिन पहले गंगू ने खबर दी। रुपया-गहना नटनी के कूएँ पर पहुँचा देना, नहीं तो गाँव आग की भट्ठी हो जायेगा। साहू ने सुना, सुन के हँसा। कोतवाल को तार दिया। सिपाही तैनात हुए। रात के बारह-एक तक बंदूक भर-भर लोग जागते, फिर दूसरा पहरा लगता। अबके किसना जाट ने कहा आकर कि साहजी! हाते में घुसकर जमाई राजा पैर धुलायेंगे। तैयार रहना। जितनी देर में साहू सँभले, सिर से उतार ले गया पगड़ी जो साहू की दो पुश्तों की इज्जत थी। हुई रात। उस दिन सिर्फ बीरू था और आठ डाकू और थे। एक-एक आदमी को बाँध दिया। कोतवाल डर के मारे पखाने में घुस गया। साहू भुस में छिपे थे। साहू की लुगाई डर के मारे दौड़ी। बीरू ने पहचाना। यही वह छोकरी थी जो साहू बन्दूक के जोर से काश्तकार के घर से दिन-दहाड़े गाँव के देखते-देखते पालकी में ले आये थे। बीरू ने कहा—राँड, रोती क्यों है? कौन तुझे छुये है? एक औरत नहीं छुई। जो लुगाईयाँ गहने पहने थीं, वह पहने रहने दिये। मगर बाकी एक-एक चीज साँड़नी पै लदवाके ले गये। जै भवानी की और बन्दूक धड़ाधड़ धाँय-धाँय। विस दिन बीरू ने तीन खून किये।

सुननेवालों के चेहरों पर आतंक छाया हुआ था। रफ़ीक ने कहा—ओफ्फ़ो! तब तो बिलकुल शेर का बच्चा था।

सुलेमान बोल उठा—ताँतिया और सुलताना का-सा हो गया?

काल्लू बोला—मगर क्या दिल था विसका! मेरी लगी ड्यूटी कि

विसे गिरफ़्तार किया जाय। सुनते ही कान खड़े हो गये। मगर महर से तुम्हारी हमने भी कुछ बेकार जिन्दगी का हुनर नहीं खोया। बंटा गाँव में हम भी विन्हीं में जा मिले। सलारू ने आँखों को देखकर कहा—तेरी आँखों में डोरा नहीं है। खा भवानी की कसम कि माँ-बहनों पै निगाह न डालेगा। अमीर से लूटैगा, एक चौथाई गिरोह का, एक चौथाई गरीबों को और बाकी अपने लिए रखेगा। और जिस दिन तू दगा देगा, सज़ा पायेगा। जे कहकै मुझ पै विनने बन्दूक तान दी। हिम्मत करके मैंने कसम खाई। मगर मैं तो पकड़वाने गया था विसे। बड़े-बड़े डाके किये। एक डरावने नाले के नीचे सुरंग खोदके विसमें उसने हथियार रखे थे। एक बार सलारू ने तय किया, कण्ठामल के वाँ चलेंगे। विसकी आलीशान कोठी थी। बगल में बड़ का एक बड़ा पेड़ था। विस पै एक झण्डा था। विसे मैंने रात ही चढ़के दाँये हाथ को झुका दिया।

रफ़ीक ने कहा—फिर ?

काल्लू कहता गया—आलीशान हवेली पै रात को बारह बजे शंख बजा। भवानी मैया की जै से गाँव जाग गया। और फिर चलीं गोलियाँ। पुलिस ने घेरा डाल दिया। अङ्गरेज अफ़सर था। सात सौ बन्दूकदार सिपाही थे। ढ़ाई घण्टे धड़ाधड़ गोलियाँ चलीं। एक के बाद एक डाकू गिरता गया। कान बहरे हो-हो जाते थे। औरतों और बच्चों की दहशत-भरी आवाज़ दिल दहला रही थी। गाँव के लोग छिपे पड़े थे। बढ़ने की हिम्मत नहीं पड़ती थी विनकी। मैंने देखा, सलारू चिल्लाया—बीरू! माँ भवानी की—! दस बचे डाकुओं ने आवाज़ उठाई—जय! बीरू ने कहा—यों नहीं। अब जिन्दे नहीं पकड़े जायेंगे। सलारू ने कहा—लगे! फिर गोलियाँ चलीं। सात बचे, फिर तीन, फिर सलारू और बीरू बस दो रह गये। धाँय-धाँय में सिपाही गोलियाँ चलाते ऊपर चढ़ पड़े। सलारू ने कहा—माँ भवानी, जो कमी रह गई वो क्षमा करियो। बीरू ने सलारू के, सलारू ने बीरू के सीने से अपनी-अपनी बन्दूक साधकर एक दूसरे की तरफ़ देखा और मुस्कराये।

अङ्गरेज अफ़सर ने देखा, दोनों बन्दूकें एक साथ चलीं और एक धाँय के साथ दोनों कटे पेड़ की तरह गिर गये। मेरी आँखों में आँसू आ गये। पुआल में छिपा मैं देख रहा था। बाहर निकला। गोरे को सलाम दी। बोला—हम टुमसे बहोट ख़ुश है।

वह कुछ देर रुका और फिर कहने लगा—सरकार ने विस गोरे को एस० पी० बना दिया।

रफ़ीक ने जल्दी से पूछा—क्या चीज़? क्या बना दिया?

'अबे, सुप्रिनटेंड; समझा? कोतवाल को बादशाह का खिल्ला मिला। तीन-तीन हजार का इनाम सिपाहियों में बाँटा गया और काल्लू पंडत को क्या मिला कि तुम्हारा काम तो अच्छा है, मगर ऐतियात नहीं दिखाया तुमने। डाकू पकड़ने में सिपाही बहुत मारे गये।

काल्लू ने देखा, सब उदास बैठे थे। हमीदा बोला—तुमने दग़ा की विसके साथ? ऐसे बहादुर को पकड़वा दिया? रोटी तुम्हें नहीं मिल लई थीं कि विन तीन हज्जार पै रपट पड़े? तुम अल्ला को भूल गये जो ऊपर बैठकर इन्साफ़ करता है।

रफ़ीक हँसा—खुदा-वुदा नहीं। लेकिन तुमने ऐसे दिलेर को मरवा दिया! मरते दम तक वे मुस्कराये थे?

काल्लू ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—हाँ यार, वे तो मरने के बाद भी ऐसे डरावने निडर थे कि मैं तो देखके काँप गया। और नतीजा यह निकला कि काल्लू पंडत ने स्तीफ़ा दे दिया और वो मज़ूर भी हो गया है। अब काल्लू सरकारी नौकर नहीं, तुम-जैसा ही हो गया है।

बात ख़त्म होने के साथ ही बोतल खोलनी शुरू कर दी। आगे बढ़कर सुलेमान रोटियाँ रख गया। काल्लू ने रोटी का कौर तोड़कर कहा—पहले हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में हम थोड़ा-सा पैसा पाकर लड़े थे। डाकू का धरम भवानी है रफ़ीक! मैं हिन्दू, तू मुसलमान, मगर दिल एक है तो आ जा...

रफ़ीक बढ़कर खाने लगा। हमीदा बोतल से मुँह हटाकर बीड़ी

का लच्छेदार धूआँ फेंक रहा था। छल्ले उस धुँधले अँधेरे में बनकर घूमते और फिर अपने आप काँपते-मँडराते हुए फैल जाते।

(५)

झाड़ियों से घिरी चामड़, जिसमें एक कोने में कुछ कोठरियाँ थीं। उन्हीं में से एक में दाँव लग रहे थे। कोठरी में सीलन थी। एक दरवाजा था जो भिड़ा हुआ था। बीच में दरी बिछी हुई थी। काल्लू ने कुछ वजनी गालियाँ देते हुए कौड़ियाँ फेंकीं और बोल उठा—ले बेट्टा, पौ!

दूसरी ओरवाले ने कहा—पञ्जतन।

पैर के नीचे से दबे निकालकर सामने सरका दिये। पक्के हाथ ने उन्हें चुपचाप उठाया और काल्लू के पैर के नीचे दबा दिया। सुलही हो रही थी। नाल का डिब्बा पास में रखा था।

दरवाजे के पास उस्ताद (तैराक) बैठे सुलफे का दम लगा रहे थे। उनकी चिलम में से फूँक खिंचते वक्त एक झल्ल निकल आती थी और फिर उसके बुझ जाने पर धूआँ उनकी नाक, मुँह सबसे एक साथ निकलने लगता था। उस्ताद कुछ देर खाँसते थे और फिर आँखों में आये आँसू धोती उठाकर पोंछ लेते, जिससे उनकी सूखी-साखी जाँघें दिखाई दे जातीं। उनकी बगल में एक सिपाही बैठा था जो अपनी अलग बीड़ी सुलगाकर पी रहा था। नशा उसे पसन्द नहीं था। उस्ताद कहने लगे—खेलते कप्तैन तो हम भी दिखाते हाथ।

भीतर से आवाज आई—'कबूतर की आँख', और किसी ने किसी को गन्दी गालियाँ देकर कहा--अट्ठे ले दो। और अंटी में कुछ लगाते हुए हमीदा बाहर आ गया। था चामड़ में, किन्तु वह समाज की उस श्रेणी में थे जहाँ सस्ते और हानिकारक मनोरञ्जन में भेदों की समाप्ति हो जाती है।

हमीदा ने बढ़कर सिपाही से कहा—कहो जमादार, क्या हुक्म है? बोलो। और चार आने चुपके से उसकी जेब में डाल दिये। वह कहता गया—तुम्हारे ठाट हैं सा'ब! आफत तो हमारी है। सरकारी आदमी हो। दस पै कब्जा है। बीस पै जोर है।

चंदा बैठा देख रहा था। अबके छक्के पर उसने जोर मारा। निकाली अंटी से दुअन्नी। उसने झटके से हाथ बढ़ाया। अट्टा था, हार बैठा।

उस्ताद की आँखों पर एक चमक-सी खेल गई।

'अबे तो', सिपाही ने कहा—तुझे क्या मिर्चें लग रही हैं? ले ये बीड़ी, ले न! लगा न दो दम, वर्ना उस्ताद की चिलम तो है ही।

उस्ताद ने कहा—जे तो अपनी-अपनी किस्मत है। हाँ-हाँ, ले चिलम...

हमीदा चिलम में दम मारने लगा। भीतर से किसी ने दरवाजा खोल दिया। सिपाही ने घूमकर देखा और बोला—'अबे बोल दे छक्का।'

'छक्का!' आवाज हुई और 'वाह जमादार, मार लिया, क्या कहने हैं? यह दाँव पूरा तुम्हारा रहा।'

जमादार ने हँसते-हँसते अपनी मेहनत का पैसा जेब में सरका लिया। राख में से धूआँ उठने लगा। काल्लू ने कहा—अबे, देख तो किधर क्या हो रहा है?

एक छोटा-सा लौंडा आँच ठीक करने लगा। चिलम-बीड़ी की जरूरतों के लिए एक कण्डा राख में दबा रखा था। उसी में से धूआँ उठ रहा था।

काल्लू ने लौंडे के हाथ पर चार पैसे रख दिये। लौंडा लपककर बाहर निकला। सिपाही बोला—अबे, किधर चला?

उस्ताद ने तिरछी नजरों से सिपाही की बेडोरा आँखों को देखा और एकदम रुख बदलकर बोले—अबे लौंडे, किधर? इधर आ, जमादार को सलाम कर।

लड़का पास आ गया। उसकी मुट्ठी में पैसे थे। उस्ताद ने मुट्ठी खोलकर एक पैसा निकालकर कहा—जा, जमादार के लिए डबल का पान तो लगवा ला।

जमादार ने कहा—तमाकू भी अलग ले आइयो।

लड़के ने जमादार के सिर पर खून के रंग की लाल पगड़ी देखी और वह धीरे-धीरे चला गया।

उस्ताद की चिलम में दम मारते-मारते हमीदा कहने लगा—उस्ताद! एक बारी चुन्ननखाँ के याँ वही मुन्नी के अट्टे के पिछवाड़े खेल हुआ था। विसमें एक बबुआ आ गया। जे काल्लू ही ले आया था। कया था, छापेखाने में काम करते हैं। फिर मेरे कान में कया कि इसकी जेब में पैंतीस रुपये हैं। तब क्या था! चिड़िया देखके बन्दा आगू खिसकके बैठा। साला सौक करने चला था। रफ़ीक को भेजके मुन्नी को बुलवाया और विसकी बगली में बिठाल दिया। फिर क्या था, पैंतीसों के पैंतीस हार गया। बड़ा रोया। तब पाँच रुपये वापिस दिये। बिन दिनों जे ही जमादार थे विस हल्के में। हम तो इन्हीं की महर पै खेले हैं। और कसम से इनके हल्के के बाहर कदी बाहर गये हों तो सूअर खाया हो मैंने। चार रुपये इन्हीं को भेंट दी। लेकिन तक़दीर तो विसकी अड़ियल थी। दरवाजे के बाहर निकलते ही किसी ने विसकी जेब ही काट ली। तब मुन्नी ने विसे दो-तीन रुपये दिये। अजी, बड़ी अच्छी औरत है।

'बड़ी!' सिपाही ने आँखें नटेरकर कहा—हमें तो उसने गैर नहीं समझा। और भाई, कौन नहीं लेता? ऐसा पारसा कौन है, बोलो? सेठ रतनचन्द, रामलाल, हरीदास, तीन अड्डे तो मुझे खबर हैं जहाँ हज़ारों का अलदा-बलदा है। नाल भी गड़ती है, पर कोई पकड़ा नहीं जाता। क्यों? दो-दो हज़ार कोतवाल सा'ब के हर महीने बिना माँगे पहुँच जाते हैं। उन्हें क्या कमी है? हमारी तो तनखा ही कम है। बीबी है, बच्चे हैं, पूरा कैसे पड़े? यों तुम्हारा भी सौक पूरा हो जाता है। हमें क्या गरज कि किसी से कुछ कहने जायें?

उस्ताद ने कहा—ठीक है, ठीक है।

इतने में लौंडा पान लेकर लौट आया। सिपाही ने पान खा लिया और अपने पीले दाँतों से उसे भली तरह से चबाने लगा।

उस्ताद कहने लगे—माँगपत्ता हमने अखाड़े में खूब खेली। जब शुबहा हुआ, एक कोने में पत्ते सब मिट्टी के नीचे दबा दिये और लगे जोर करने। अजी भैया, कोई फ़्लास खेला है तुममें से? मैंने कया—सेठ

नन्हूमल के तले हम खेले कि साली कोई डर की बात नहीं। वहाँ कौन आ सकै था? बड़ी मुश्किलों से सीखा था वो खेल। तुम क्या सीख सको विसै? अँगरेजी का खेल है। हमारे सेठ को विस गोरे ने एक और अँगरेजी का जूआ सिखाया था, मगर सेठजी विसै खुले-आम खेलैं थे, कोई डर-खौफ का नामोनिशान नहीं।

हमीदा ने टोका—जूआ न हागा।

'अजी!' उस्ताद चिढ़े-से बोले—कौल-कौल कहें थे। दाँव भी लगें थे, और विसकी ऐसी-तैसी, मुझे ऐसा पत्थर अकल समझ लिया तुमने कि जूआ भी नहीं पहँचान सकूँगा?

'नहीं, नहीं, जे मतलब नहीं है मेरा उस्ताद। तुम तो खिचने लगे और लो चिलम पियो', और चिलम बढ़ाकर हमीदा हँसने लगा। सिपाही ने फिर मुड़कर देखा और कहा—'हमीदा, यार बीड़ी पिलवा।'

'अभी लो जमादार', लपककर भीतर गया, और रफ़ीक के नाड़े में बँधा बटुआ खींचकर बीड़ी निकाली, हालांकि बिना बोले, बाँये हाथ से रफ़ीक कान में लगी बीड़ी की तरफ़ इशारा कर रहा था। बाहर आकर हमीदा ने कहा—जमादार, आँच पै सुलगा लाऊँ?

जमादार इस समय लाल पगड़ी उतार विश्राम के लिए टाँगें फैला चुका था। उसकी चुटिया दिखाई दे रही थी। बोला—हाँ-हाँ, क़सम से दियासलाई है मेरे पास, ले आओ, ले आओ, तुमसे जलेगा नहीं ठीक से। उस्ताद मुस्कुराये, जैसे चलो, कम से कम इतना तो है। हमीदा समझ गया। जमादार खुद सुलगाकर बीड़ी पीने लगा।

काल्लू ने आखिरी आवाज दी, 'पौ बेट्टा!' और फिर पैसे गिनता हुआ उठा। कहता जा रहा था—'अबे, इन हाथों से हमने बड़े-बड़े करतब किये हैं। बकरियाँ नहीं चराई हैं। समझे? पहले टाँगें चूमो हमारी, तब सीखोगे, चलै है बे चंदा? रफ़ीक! उठ बे!'

चंदा और रफ़ीक उठ खड़े हुए और तीनों सिपाही के पास आ खड़े हुए। काल्लू ने बगलों में झाँककर कहा—क़सम से जमादार, कुछ ठोस रकम हाथ न लगने पाई। 'ले, अबके तो रहम कर', कहकर पाँच

का नोट बढ़ाया। सिपाही पुराना घाघ था। हँसके बोला—पण्डत, तू बड़ा फ़र्ज़ी है।

'नहीं, बस जमादार, अब न बोलना, और तू तो अपना पुराना साथी है,' और तीन रुपये और बढ़ा दिये।

'क्यों बे चन्दा, कहाँ चला ?' सिपाही ने कहा।

काल्लू हँस पड़ा—साला बुढ़िया से तेरह लाया था, सब गँवा दिये। खेलता है, जानै कुछ नहीं। यहाँ तीन के तेरह कर दूं......

उस्ताद हँसे। बोले—तैने बड़े मठा दुघारे हैं ?

सब ठठाकर हँस पड़े। भीतर अभी जूआ हो रहा था। अब्दुल की आवाज़ आ रही थी—अट्टा!

'नहीं है।'

'नहीं कैसे है साले! छूके उल्टी कर दी कौड़ी! तेरी.........'

फिर उधर से कुछ भारी भरकम चिढ़ानेवाली गालियाँ चलीं जिनका सम्बन्ध अधिकांश एक दूसरे के माँ-बाप से था और खेल उठ गया। बड़ा शोर मचाते हुए जुआरी लड़ते हुए बाहर निकल आये। उस्ताद ने बीच-बचाव किया, मगर नगाड़े की आवाज़ में तूती की कौन सुनता? अब उस्ताद बूढ़े हो गये थे। उनमें ज़ोर न रहा था। सामने बड़े नाले को मेहतर साफ़ कर रहे थे। एक आदमी सड़ी कीचड़ को निकाल-निकालकर बाहर इकट्ठा करता जा रहा था। उनमें से किसी ने मुड़कर भी न देखा। वह सब जानते थे। भीड़ आती देखकर सिपाही सिर पर पगड़ी धरके चामड़ के पीछे की तरफ़ चल दिया, उधर ही जिधर कुम्हारों के छोटे-छोटे कुल्हड़ और मटकों से भरे घर थे और गधों की बेहद लीद ने रास्ता गन्दा कर रखा था।

जब वह चला गया, अब्दुल ने कहा—खूब छकाया साले को। नहीं तो उल्टे उस्तरे से मूँड़ देता।

सब ठठाकर हँस पड़े।

काल्लू, चन्दा और रफ़ीक चल पड़े। रास्ते में कोई जवान औरत घूँघट काढ़े लोटा लिये शायद दिशा-मैदान को जा रही थी। तीनों ने

उसे एक साथ देखा। तीनों पर शैतानी नशा छा रहा था। काल्लू की तान छिड़ उठी—

सैंया बरजोरी......

और फिर स्वर ऊँचा उठता गया—

छिपाऊँ कहाँ जोबना......

औरत ने मुड़कर चुपचाप छिपी नज़रों से देखा और उसकी चाल में एक नया उत्ताप, नई गति, नई थिरकन आ गई जैसे गड्ढे में भरे गन्दे पानी में कंकड़ डालते ही लहरियाँ हाथ पसारकर काँप उठती हैं, जैसे वह गोल-गोल चक्करदार लहरें किनारा तोड़ देना चाहती हैं।

काल्लू ने एक दम आवाज़ दी—वह मारा!

रफ़ीक 'शाबाशै! शाबाशै!' करके दाद देने लगा।

तीनों चले जा रहे थे।

आसमान में काली घटाएँ घुमड़ रही थीं। सुदूर पेड़ पर मनोहर छाया फरफरा रही थी। उस समस्त वातावरण ने अपरूप ढंग से उनको अधिक चञ्चल और सतृष्ण बना दिया। हृदय में पशु की-सी वासना भर गई, जैसे जाँघ से जाँघ रगड़ने में शरीर में एक पाशविक वासना, एक भयंकर ताप छा जाता है जो शायद ही कुछ सोच पाता हो!

(६)

लकड़ी के काले मैले अनगढ़-से दरवाज़े के सामने एक हट्टा-कट्टा तेलिया कुम्मैद गुण्डा बैठा-बैठा मैले दाँतों से पान चबा रहा था। उसके दाँतों के बीच की जगह काली और लाल थी। मौके पर वही पैसे लेता और दंगा-फसाद होने पर अपने आप जैसा सूझता वैसा ही इन्साफ़ करता। भीतर एक कोठरी थी, उसके सामने एक दालान था, जिसके दो तरफ़ दो बराम्दे थे और एक कोठा था। कोठे में बड़े बड़े मटकों और हँडियों में ताड़ी भरी धरी थी। उसके सामने ही एक पत्थर की पटिया के पीछे से एक मैली दाढ़ीवाला व्यक्ति पूछता था—क्या लोगे?

गाहक कहता—अद्धा।

एक स्याही के रङ्ग का ख़ूँख़ार आदमी हँड़ियाँ उठाता और बाहर

हाथ बढ़ा देता। ताड़ी की बदबू से अन्धकार की धूमिल छाया में गन्दगी तीव्र हो उठती, किन्तु इन सबको आदत थी, जैसे ब्राह्मण को गोमूत्र पीने की होती है। हल्लागुल्ला साधारण बात थी। बीच में कुछ बेड़नियों का जमघट था। कालू, रफ़ीक और चंदा जब पहुँचे तब ताड़ी का बाज़ार गर्म था। कालू पटिया के पास चला गया और पैसे निकालकर बोला—अद्धा!

मैली दाढ़ीवाले की आँखों में परिचय का भाव आ गया और कठोरता में सौम्यता की एक तरल चमक काँप उठी।

'आहा! कालू बर्खुदार हैं? इधर कहाँ थे इतने दिनों से?'

कालू चीखा—अबे, उठा साले हँड़िया। बढ़ा दे! बड़ा आया पूछनेवाला। अपनी घर से जाकर पूछियो। समझ?

दाढ़ीवाला ठठाकर हँस पड़ा। बोला—ताज्जुब है, वहाँ से लौट आये? बेट्टा! सच कह, किसकी शागिर्दी में था?

कालू की एक स्याह हाथ में हँड़िया अपनी ओर आती दिखाई दी।

कालू ने कहा—अच्छा? कोयला छाप भी मौजूद हैं? कहो माशूक, अच्छे तो हो?

काला अहमद हँसा। उसके दाँत बिजली की तरह मुँह में चमक उठे। कालू तपाक से बोला—बस, तेरी एक अदा यही तो है। एक बार कह दे कि हमने तेरे घर छोड़ फ़कीर होने की खबर सुन ली है।

अहमद ज़ोर से हँस पड़ा। बोला—तेरे सात खून माफ़ हैं।

'बस यही चाहिए! हम तो टुकड़ों पर पलनेवाले गुलाम हैं।'

पीछे से रेला आया। कालू हाथ में हँड़िया लिये मुश्किल से पटिया से टकराता-टकराता बचा। गालियाँ देता हुआ जब वह बाहर निकला, चन्दा हँसता हुआ उसके पास आया और उससे बोला—अबे, चल। तुझे मजा दिखाऊँ।

दोनों चलकर बराम्दे में पहुँचे। वहाँ से देखने लगे। एक आदमी मुँह के बल नशे में पड़ा था। उसकी अंटी खुली पड़ी थी। उसकी बची शराब रफ़ीक पीकर झूम रहा था और एक बेड़नी के गले में हाथ डाल

रखा था। नशा चढ़ आया था और हाथ काँप रहे थे। कान की बीड़ी टेढ़ी होकर खिसक रही थी। बेड़नी गा रही थी। उसका स्वर फटा था, गुफाओं के पत्थरों-सा अनगढ़, कहीं-कहीं खुरदुरा। कानों पर तेल से बेहद चुपड़े चिपके हुए बाल, जिनमें गटापार्चे की पिनें; कानों में बालियां नाक में चौड़े फूल का लौंग; सस्ती कुर्ती, सस्ती रेशमी साड़ी, पैरों में छम-छम चाँदी के गहने, हाथों में बजनेवाली चूड़ियाँ, पैरों में घुँघरू; माथे पर सुहाग-बिन्दी, हाथ-पैरों पर मेंहदी, होठों पर आलता और आँखों में कज्जल; उसके बाद वह छका और थका जोबन, अदा, नज़ाकत का स्वाँग, नज़र का तीर...

रफ़ीक झूम रहा था। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और लड़खड़ाता-सा बोला—माइ डारा, माइ डारा.....बेड़नी हँस दी और गाने लगी। न जाने रफ़ीक में क्या धुन जगी कि वह भी गाने लगा—

जानी तेरा राज है,
बन्दा गुलाम है।

बेड़नी मुस्कुराई और उससे चिपटकर बैठ गई। वह गा रही थी और अजीब कला से अपनी कमर बैठे-ही-बैठे लट्टू की तरह चला रही थी। रफ़ीक भी सुर में सुर मिलाने लगा। बेड़नी ने उसकी जेब में चुपचाप अपना तेज़ हाथ डाला और टटोलने पर जब उसे एक भी पैसा न मिला तो तपाक से खड़ी हो, आँख नचाकर बोली—ऐ चल मर्दुए! अपना बाप फूँकके आया है यहाँ?

लेकिन रफ़ीक नशे में था, वह गाता रहा।

इसी समय एक औरत बड़ी ज़ोर से चीख उठी। कुछ लोग इकट्ठे हो गये। औरत एक झूमते शराबी की तरफ़ दिखाकर चिल्लाने लगी—मुआ! अपनी अम्माँ समझकर आया था यहाँ? मुँडोकाटे! और शराबी बहुत ही गन्दी गालियाँ दे रहा था। उसके मुँह से बेहद बदबू सड़ान-सी भर रही थी। लोग हँसने लगे। वह रोने लगी। कोलाहल बहुत बढ़ गया। तब दरवाज़े पर बैठा हट्टा-कट्टा व्यक्ति वहाँ आया। उसे देखकर औरत और ज़ोर से रोने लगी। लोगों में एक हैरत-सी

पैदा हो गई। गुण्डा आगे बढ़ा। उसने कठोर स्वर से पूछा—क्या है अम्मा?

अम्मा ने अपना हाथ उसकी तरफ़ कर दिया। उस पर इतनी जोर से नोचने का निशान था कि नील पड़ गया था। गुण्डे को आव सूझा न ताव। उसने लपककर पड़े हुए शराबी के दो करारी लातें मार दीं। शराबी कराहकर झूम गया। दरवाज़े पर भीड़ इकट्ठी हो गई थी। गुण्डा लौट गया और एक शराबी उस पहले के पास में पड़ा एक जूता उठाकर उसकी चाँद पर धीरे-धीरे मारने लगा। थोड़ी देर में दोनों एक दूसरे से भिड़े बेहोश हो गये।

काल्लू और चन्दा बैठ गये और पीने लगे। चन्दा पर नशा बहुत जल्दी चढ़ गया। वह एक बेड़नी को देखकर गालियाँ देने लगा। उसने कोई बुरा न माना, उलटे मुस्कराकर कहा—चल मुये!

चंदा और बकने लगा। वह पास आ गई। काल्लू ने उसे अपने पास खींच लिया। चन्दा बोला—इ-इधर आ···मे-मेरे पास······

काल्लू ने खींचकर उसमें एक चपत दी और चन्दा रोने लगा—हाय, मुझे मार डाला, मुझे मार डाला······

काल्लू ने बेड़नी को मदमाती आँखों से देखा। औरत ने दिल-ही-दिल में महसूस किया कि है कोई भारी पत्थर, यों ही न बह सकेगा। हटकर बैठ गई। काल्लू पर नशा कम चढ़ता था, क्योंकि उसे पीने की बहुत आदत थी। आबकारी के सिपाहियों से उसकी दोस्ती थी। वह ठर्रे की बोतल खोलते थे, यह चुल्लू से पी जाता था।

काल्लू ने कुल्हड़ से मुँह लगाया और अपनी अंटी से अठन्नी निकालकर उसके सामने धर दी। वह मुस्कराई और फिर पास आ गई। काल्लू ने उसके मुँह से कुल्हड़ लगा दिया। औरत ने समझा, अच्छा आसामी है, ऐसी चिड़िया से बिगाड़ नहीं करना चाहिए। वह धीरे से सब पी गई। उस पर पीते ही नशा चढ़ा। पुरानी ताड़ी थी। वह झूमने लगी और उसने काल्लू के गले में हाथ डाल दिये। काल्लू मुस्कराया। एक कुल्हड़ और भरा। आधा खुद पिया, आधा उसे पिला दिया। औरत

बेहोश हो गई। कालू ने उसे बेहोश चन्द्रा के ऊपर ढकेल दिया। दोनों बोरों की तरह पड़े थे। चन्द्रा के मुँह से झाग निकल रहे थे। उसकी आँखें ऐसे खुली थीं जैसे किसी प्यासे कुत्ते की। कालू ने फुर्ती से उसके कपड़ों को टटोला। अचानक उसे ध्यान आया। उसने जल्दी से उसकी अंटी टटोली, झटका दिया। साड़ी खुल गई। सब पैसे निकल आये। कोई चार रुपये की रक़म थी। कालू ने उसे अंटी में लगाया और दूसरी तरफ़ गानेवाले शराबियों की टोली में खिसक गया। वहाँ कुछ मज़दूर और रिक्शा खींचनेवाले बैठे पी रहे थे।

शराब मन की वासना बढ़ाती है, स्वभाव को उद्दंड बनाती है, किंतु क्रियाशक्ति को छीन लेना उसका पहला काम है। रिक्शावालों के बदन से पसीने की बेहद बू आ रही थी। क्षण-भर कालू का जी मिचला गया। कालू भी गाने लगा। अपनी-अपनी हँड़िया पकड़े सब झूम रहे थे। जिसकी जो तबीयत आती थी, बकने लगता था। एक रिक्शा-वाले ने दमे के मरीज़ की तरह खाँसा और अररर करके बड़ी ज़ोर से क़ै की। उसकी बदबू से सबका सिर चक्कर खाने लगा। क़ै करनेवाला थक गया और उस ज़ोर के लगने से उसे एक चक्कर-सा आया जिससे उसने क़ै पर ही अपना सिर टेक दिया। मक्खियाँ उसके चारों ओर भिनभिनाती रहीं। कुछ देर बाद ही इधर-उधर दो-एक लालटेनें जला दी गईं। एक बेड़नी ने देखा कि दो आदमी बेहोश पड़े हैं। एक मर्द, एक औरत। औरत को बेहोश देखकर उसे कुतूहल हुआ। उसने ग़ौर से देखा। स्त्री प्रायः नंगी थी। आफ़तों से बचने को बेड़नी चुपचाप खिसक गई और भीड़ में जाकर नाचने लगी। वह नृत्य केवल अश्लील अंग-चालन था। गुंडों ने उसे घेर लिया। वह हँसकर आँख मार देती। भयंकर कोलाहल उठ खड़ा होता।

इधर कुछ शराबियों ने उस अधनंगी बेहोश औरत का पता पाया। स्त्री का मुँह टेढ़ा हो गया था। उन्होंने भी उसे होश में लाना आव-श्यक समझा और नतीजे में सब उसे घेरकर शोर करने लगे। इतने में वही काला हट्टा-कट्टा आदमी आया और एकदम उसने भीड़ को

चीरकर भीतर घुसकर देखा। लाजवाब हकीम उस समय आपस में लड़ रहे थे। औरत नंगी पड़ी थी। उसे वे सब भूल गये थे। काले गुंडे ने कोई अजीब बात नहीं देखी। उसने अपना डंडा घुमाया। भीड़ तितर-बितर हो गई। उसने एक हाथ से स्त्री को उठा लिया। पटिया के सामने लिटाकर दाढ़ीवाले व्यक्ति से नींबू माँगकर उसके मुँह में निचोड़ा। होंठ हिले। फिर एक नींबू और। औरत ने अलसाकर आखें खोल दीं। एकदम चौंककर वह उठ बैठी और रोनी सूरत से बोली—हाय, मेरे कपड़े।

मुस्कराकर काले गुण्डे ने बायें हाथ से उस पर कपड़े फेंक दिये। औरत पटिया के पीछे जाकर साड़ी बाँधने लगी। अहमद उसे छेड़ने लगा और वह अपने चार रुपयों के लिए चिल्ला-चिल्लाकर सारे शराबियों को गन्दी-गन्दी गालियाँ देती रही।

काल्लू ने देखा, चन्दा और रफ़ीक दोनों बेहोश पड़े थे। उसने झुककर कहा—चलै है बे चन्दा ?

चन्दा ने ज़ोर से क़ै की।

(७)

काल्लू जब पैसे चुकाकर बाहर निकला, सिनेमा का पहला शो ख़त्म हो चुका था। दूसरा शुरू होने में थोड़ी ही देर थी। 'इन्दरसभा' नामक चित्र आया था। दर्जों के हिसाब से साढ़े चार आनेवाला टिकट बाहर ही मिलता था। एक हाथ-भर घुस सके केवल इतना ही एक छेद था जिसके अन्दर से फुर्ती से मगर शोर से घबराया हुआ कोई टिकट बेच रहा था। टिकटघर की खिड़की का जंगला पकड़े तीन आदमी झूल रहे थे। उनके बदन पर कपड़ा नहीं था। केवल लँगोट पहने थे। टिकट पाने की भीड़ में कपड़े का साबूत बच जाना ज़रा मुश्किल-सा ही काम था। कुछ लोग नाराज़ थे और माँ-बहिनों के शरीर का जायज़-नाजायज़ वर्णन करके अपनी कमज़ोरी पर झल्ला रहे थे।

यह शहर का पुराना सिनेमाहाल था। पहले इसी में पारसी थियेटर होता था। तब बहुत-से पँखों को सीध में बाँधकर लटकाया जाता था

और दो पहलवान उन्हें ऊँघते हुए नंगे बदन खींचा करते थे। फिर एक दिन बिजली के पँखे लग गये। तब वे लोग निकाल दिये गये। छः-सात नाम बदलकर भी यह सिनेमाहाल अब तक चल रहा था। शहर का सबसे ज़्यादा चिल्लाकर प्रचार करनेवाला बाहर गरज रहा था—इंदरसभा! इंदरसभा! दूसरा शो शुरू होगा! तीसरा हफ़्ता, तीसरा हफ़्ता।

टिकट खरीदकर काल्लू ने पान लेते हुए देखा, एक अच्छी शक्ल का लड़का पानवाले की दूकान पर चढ़ा बैठा था। पानवाले ने कहा—क्यों बे, घर नहीं गया?

लड़के ने कहा—अभी जा रिया हूँ उस्ताद!

पानवाला काम में लग गया। लड़के ने खाँसा और काल्लू ने उसके मुँह से आती शराब की तीखी गन्ध सूँघी। पान खाकर आँख मिलते ही काल्लू ने उसकी तरफ़ आँख मार दी और लड़का मुस्कराया। काल्लू बीड़ी सुलगाकर भीतर दाखिल हो गया।

हॉल पुराने क़ायदे का बना हुआ था। इसमें सीढ़ियाँ थीं। जो जितना रुपया दे सकेगा वह समाज की उतनी ही ऊँची सीढ़ी पर बैठ सकेगा। अपनी क्लास में काल्लू ने देखा, बेहद भीड़ थी। कोई एक ओर बैठा 'तेल मालीस, मालीस तेल' वाले से सिर में मालिश करवा रहा था। पान, सिगरेट, मिठाई आदि बेचनेवाले ऐसे चिल्ला रहे थे जैसे किसी स्टेशन पर।

खेल शुरू होने के बाद दो आदमियों में झगड़ा हो गया। झगड़ा जगह के पीछे था। ऊपर के दर्जे में से किसी ने केले का छिलका डाल दिया था जिसकी वजह से एक छोटा मुँह बड़ी बातें उगल रहा था। एक तरफ़ से सीटी बजने की आवाज़ आई और ध्वनि पूरे हॉल में गूँज गई। किसी ने चिल्लाकर कहा—ख़ामोश! और न मालूम किसको चुप करने सब ख़ामोश-ख़ामोश चिल्लाने लगे।

हॉल में सहसा उजाला हो गया। पुरानी मशीन थी। रील टूट गई। इस पर आपरेटर पर बीसियों गालियों के फूल बरसाये गये।

जब पर्दे पर अप्सराएँ आईं तो कुछ मनचलों ने उन्हें आवाज़ देकर बुलाया भी, मगर वह न आईं। लोग आपस में धीरे-धीरे बात-चीत करते और जब आवाज़ तेज़ हो जाती, सब चिल्लाते—ख़ामोश!

ऊँची क्लासवाले इन बातों को देख-देखकर हँसी से लोट-पोट हो रहे थे। एक ने कहा—कला की क़द्र तो इनसे मीलों दूर है। सिनेमा भी कला का एक उत्कृष्ट रूप है।

दूसरे ने कहा—जन-समाज को हमें वैज्ञानिक रूप से शिक्षित करना है, न कि उनका मज़ाक़ उड़ाना।

'जी हाँ,' पहले ने कहा—खुशी के वक्त ताली पीटना और नाच देखकर हाय-हाय करना कला की ही परख है।

दूसरे ने टोककर कहा—आप ज़रा सोचिए तो। यह लोग हृदय के बड़े भावुक होते हैं। एक ही क्षण को इन पर असर होता है, बाद को दिमाग़ रोटी-पानी के सवाल में लग जाता है। जिस संस्कृति का ह्रासप्राप्त रूप हमें सिनेमा में मिलता है वह मध्यवर्ग के बिगड़े स्वप्नों का मानसिक व्यभिचार है।

'तो फिर, धूधड़ाम बने। यह लोग तो उसे ही पसन्द करते हैं।'

'आप समझे नहीं' दूसरे ने फिर कहा—हमें वर्ग-संघर्ष की सामूहिक चेतना दिखाने का प्रयत्न करना चाहिए।

किसी और ने कहा—माशा अल्लाह! तो आप यहाँ स्पेशल क्लास में क्यों बैठे हैं? जाइए, वहीं तशरीफ़ ले जाइए और दीगरे नसीहत शुरू कीजिए।

सब ठठाकर हँस पड़े। बात दब गई।

किसी ने काल्लू से पूछा—क्यों भाई सा'ब, जे एक्ट्रेस हैं न, इनका पेशा क्या है?

काल्लू ने सरलता से कह दिया—रंडी हैं जे सब। और क्या? आज-कल कोई-कोई अच्छे घरों की आवें तो हैं, मगर पत थोड़े ही रखा जाय।

'सो तो है ही। लो बीड़ी पियो भाई सा'ब!' उस सूखे से व्यक्ति ने कहा।

बीड़ियाँ सुलग उठीं। काल्लू ने ही पूछा—कहाँ के हो तुम! घर-बार किधर है?

'मैं मुन्सिफ़ सा'ब का नौकर हूँ। आज बड़े भैयाजी ने विलायत से लौटने की ख़ुशी में दो रुपये दिये थे, सो मैंने सोची, ज़रा तफरी कर आऊँ। वर्ना बाल-बच्चों और नौकरी से फ़ुर्सत कहाँ?'

काल्लू ने देखा, इस आदमी को किसी तफ़री के लिए गुंजायश नहीं है। उसे उस पर दया आई। उसकी ओर देखा और पूछा—कै बच्चे हैं भाई?

'सात!' सूखे जबड़ों में बड़े-बड़े दाँत चमक उठे। 'हमारे सरकार कहते हैं, सिनेमा-असनेमा देखना गुंडों का काम है।'

काल्लू ने कहा—हिश। वो ऊपर बाबू लोग बैठे हैं, वो क्या सब गुंडे हैं?

वह आदमी अपनी ग़लती महसूस कर उठा। इन्टरवैल की रोशनी जली। मुन्सिफ़ साहब को देख वह और सकुच गया। थोड़ी देर बाद उसने अपने आप कहा—हम तो यों ही बिता देंगे। क्या है! परमात्मा कि इच्छा है। इतना दम ही कहाँ है भाई सा'ब, रोज-रोज बड़े भैया विलायत से थोड़े ही लौटते हैं?

काल्लू ने सोचा, इसके पीछे वज़न है। सात और एक आठ। यह अकेला चलानेवाला। वह आदमी पिसा पड़ा था। जिसके मामूली अरमान भी कुचल गये थे।

खेल समाप्त हुआ। भीड़ एकदम बाहर निकलने लगी। खूब धक्का-मुक्की होने लगी। भीड़ में से किसी ने कहा—चलै बे, पंजाबिन के याँ!

'कहाँ?'

'वहीं! नारंगियोंवाली गली में!'

दोनों भीड़ में मिल गये। काल्लू भी गली की ओर चल पड़ा।

जहाँ दो बड़े बाज़ार मिलते हैं उनके बीच में एक गली है जिस

पर एक फाटक चढ़ा है। कालू परिचित पगों से उसमें घुस गया। दोनों ओर के घर किचर-पिचर बने हुए थे। छोटे-छोटे दरवाज़े, ऊपर पुरानी-सी मैली गौखें। बेहद तंग गली और दोनों ओर खुलनेवाले पाखानों के कारण बेहद बदबूदार। अँधेरा छा रहा था। किसी-किसी जगह से कबाब की गंध आ रही थी। एक ओर कोने पर ही एक कसाई की दूकान थी जिसमें दिन में बड़े-बड़े कच्चे गोश्त के लौंदे लटके रहते थे और आदमी सिर पर मांस-भरी डलिया लेकर झुक झुक से चलते थे।

कालू बढ़ा ही था कि उसके कानों में आवाज़ आई। भीतर कोई लड़की रो रही थी।

एक कठोर स्वर की डाँट सुनाई दी—नहीं करेगी? तेरा बाप तुझे खिलायेगा यहाँ?

लड़की ने रोते-रोते कहा—तूने ही तो कहा था कि तुझसे ब्याह कर लूँगा?

'रखा तो तुझे ठीक ही है, मगर तू माने कब?'

'नहीं, मैं नहीं करूँगी!' लड़की ने दृढ़ स्वर में कहा।

आदमी हँसा! बोला—'हाय पारसा! तू क्यों मानने लगी?' और एक तड़ाक चांटे की आवाज़ आई। लड़की ज़ोर से रो उठी। आदमी ने कहा—मुँह बन्द कर ले साली का!

फिर एक धींगा-मुश्ती हुई—फिर तड़ातड़ लात, घूसे, और चाँटों की आवाज़ में रोने का घुटा-सा स्वर मिल गया।

आदमी ने कहा—अरी, तू तो क्या, मैंने पच्चीसियों ठीक कर लीं, पुलिस, काँगरेस सब धरे रह गये। ले आ बे मिर्चें! भर दो दोनों मिलकर।

घुटते स्वर में से करुण चीत्कार फूट निकले, जैसे भयानक वेदना से बेज़बान पशु आर्तनाद करता हो। लड़की के 'हाय मर गई' पर आदमी का कठोर हास्य-स्वर पैशाचिक प्रतिध्वनि बनकर फैल गया।

'बाँधके पटक दो साली को! नहीं करेगी!!'

एक दूसरा स्वर सुनाई दिया—उस्ताद, बड़ी जलन हो रही होगी। खोल दूँ?

'चुप बे हिजड़े ! भला बताओ ! कैसे ठीक हो जायेगी ? पहले तो बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था। अब लगा रें-रें करने। साले, सोचके देख, पेट कैसे भरेगा ? और यह अगर यही न करेगी तो फिर औरत करेगी क्या ?'

इसके बाद किसी ने खाँसा। यह बात काल्लू की समझ में ठीक नहीं बैठी। मन-ही-मन उसने कहा—साले, हरामखोर, आवारे ! गुंडे ! खुद तो मेहनत करते नहीं, लुगाई की कमाई खायेंगे ! दो बदबूदार आदमी उसके पास से निकल गये। एक अधेड़ औरत ने उसका हाथ पकड़कर कहा—बाबूजी, सौक करोगे ?

काल्लू ने अँधेरे में भी देख लिया कि वह प्रायः बूढ़ी थी। उसने हँसकर कहा—माई, क्या कहा ?

औरत चेतकर बोली—ऐसी-वैसी मत समझियो मुझे। हम भी खान्दानी हैं।

काल्लू फिर हँस दिया। तब वह उसे गालियाँ देने लगी। काल्लू हाथ छुड़ाकर चल दिया। एक आदमी ने रोककर कहा—लालाजी ! पञ्जाबिन आई है एक। एक नम्बर ! देखो तो आसमान की चिड़िया, सूँघो तो गुलाब का फूल !

काल्लू ने कहा—चलो !

दोनों एक गन्दे मकान के द्वार पर ठहर गये। द्वार खटखटाते ही एक बूढ़ी औरत निकल आई और बिना पूछे ही काल्लू का हाथ पकड़-कर भीतर ले गई। इसी समय दो आदमी भीतर से निकले और चले गये। काल्लू ने देखा, इस पौरी के बाद सँकरा दालान था। उसके पीछे एक छोटी-सी कोठरी थी।

बुढ़िया ने कहा—बाबू, आओ।

काल्लू ठिठका। बुढ़िया बोली—बाबू, एक रुपया !

'झूँठा बात !'

'तो तुम्हीं बोल दो। हम जिरह नहीं करतीं, नया माल है। इतना ख़याल रहे।'

'छः आने।' कालू ने कहा।

'और मेरे?' बुढ़िया ने पूछा।

'दो आने।'

दलाल ने आगे बढ़कर पूछा—'लालाजी, मेरे?'

'दो आने।'

जब कालू चुकाकर बढ़ने लगा, बुढ़िया ने कहा—लौट आओ, फिर न कहोगे।

कालू ने क़दम उठाया। दलाल ने कहा—अब रहने दे। आज कई हो गये।

कालू अँधेरे में रुक गया। दिया ने कहा—तू रहने दे। कुछ दिन में कोई न पूछेगा। यह तो जितनी नारङ्गी निचोड़ोगे, उतना ही रस निकलेगा।

'लेकिन यों तो रस ही न बचेगा।'

'उठाके बाहर फेंक देंगे तब।'

कालू ने कोठरी में घुसकर देखा, एक धुँधली रोशनी से घिरा छोटा दिया जल रहा था। एक जवान औरत थकी-माँदी बिस्तर पर पड़ी थी। औरत में एक भयानक सुस्ती थी। उसका मुँह पीला पड़ गया था।

जब कालू चलने लगा, औरत का पीलापन काँपने लगा। उसके होंठ थरथरा उठे। उसने कहा—बाबू! कुछ मुझे भी मिल जाय! उस में से बुढ़िया कुछ न देगी।

कालू ने पूछा—क्या लेगी?

'दूध के लिए छः पैसे।'

कालू से पैसे लेकर उसने कहा—बाबू! परमातमा तुम्हें भागमान करे। आज किसी ने भी कुछ नहीं दिया। सब कहते थे, बाहर दे दिया। आज बहुत हाथ-पाँव टूट रहे हैं। क्या करूँ! पहले ही बता देती, मगर फिर कौन देता? इन छः में भी दो तो बुढ़िया ले लेगी। मैं अब बहुत नहीं जिऊँगी। बाबू, मुझे माफ़ी देना। अपने लिए मैंने तुम्हें भी बरबाद कर दिया। मैं किसी को मुँह दिखाने जोग नहीं रही। उफ़, कितनी

तकलीफ़ है ? मालूम नहीं, मरती क्यों नहीं ? न दवा, न दारू, उल्टे वही काम, गन्दा काम ! हाय परमातमा, खूब बदला लिया तूने। कैसी भयानक बीमारी……

'बीमारी ?' काल्लू चीख़ उठा। भय से उसका स्वर विह्वल हो गया।

'हाँ, बाबू, वही।' औरत रो पड़ी। काल्लू को एक चक्कर-सा आया और वह सिर पकड़कर वहीं बैठ गया। औरत रोती रही।

इस समय भी पूँजीवाद ईश्वर की खोज में लग्न था, यह सभ्यता की छाया थी।

दिवालिये

[इस कहानी के पात्र कल्पित हैं। किन्तु फिर भी जो वास्तविकता की छाया मैंने ली है, वह काफ़ी भिन्न है उससे, जिसका मैंने प्रतिबिम्ब लिया है। अतः मेरा मतलब न किसी का अपमान करना है, न और कुछ। मैं उनका कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझे वह कण मात्र दिये जिससे मैंने यह गिलास भर लिया है। अपनी कहानी को सूत्रबद्ध करने को मैंने केवल कल्पना से काम लिया है।

मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।]

(१)

एक सिलसिले से सब-के-सब बेवकूफ़, एक-से-एक टक्कर के, मगर सबको जाने क्यों प्रत्येक पग पर ठोकर खाकर भी यही प्रतीत होता कि सबका अपने-अपने क्षेत्र में अत्यंत उज्ज्वल भविष्य है। और यह भविष्य की छलना ही उन्हें डूब मरने से बचाये हुई थी। एक बड़ी-सी खुरदुरी मेज़पोश से ढँकी मेज़ के एक तरफ़ रखी भारी-सी कुर्सी पर वह बैठते जो उदास-से गंभीर रहते, बहुत कम बोलते, लेकिन व्यर्थ ही प्रत्येक को उनसे राय लेने की आदत पड़ गई थी। वह कभी किसी बात का हल नहीं निकाल पाते, क्योंकि अपनी ही ज़िंदगी का वह कभी भी हल नहीं निकाल सके। लोग उनसे प्रभावित रहते, उन्हें उस्ताद कहते और वह फ़ौरन उस्तादी क़ायम रखने के लिए चाय का ऑर्डर देते। मेज़बान फिर भी गिट्टे रमेश को बनना पड़ता, क्योंकि प्याले उठाकर उस्ताद हर एक के सामने रखने के लिए उठ खड़े हों, यह किसी के भी मस्तिष्क में नहीं आ सकता था। रमेश इतनी ज़ोर से हँसता कि हवा काँपने लगती, ऐसा लगता कि ऊपर से छत फट जायेगी। चाय प्यालों में अपने आप थरथराने लगती और पास-पड़ोस के लोग इस पर मन-ही-मन ख़फ़ा होते, किन्तु कहता कोई कुछ नहीं, क्योंकि कालेज के विद्यार्थी ज़रा दूर रहें, इसी में अपना भला है। उस्ताद ने एक दिन

रमेश से कहा भी तब उसने चश्मे में से ढूँकते हुए कहा कि अगर तुम्हें उज्र हो तो मैं अपनी आदत सुधारूँ, वर्ना मैं किसी की परवाह नहीं करता। उस्ताद ने कहा—मुझे तो कोई उज्र नहीं। तुम्हारे हँसने-रोने में मुझे कोई फ़र्क़ ही नहीं लगता। उस्ताद की तरफ़ रमेश ने ऐसे देखा जैसे क्यों सा'ब ? इसी बीच मनोहर ने अपना प्याला सबसे पहले उठा लिया। कुछ देर बाद सब चाय पीने लगे। मनोहर ने अपने बालों पर हाथ फेरा। ऐसा लगता था जैसे वह अपना दिमाग़ टटोल रहा था।

रमेश ने कहा—दिन में एक बार हँसना एक डाक्टर को दूर रखता है, मैं पाँच बार हँसता हूँ...

पतली आवाज़ में साँवले से जैगोपाल ने कहा—यानी तुम पाँच डाक्टरों को दूर रखते हो ? मुर्गी की तरह रमेश फूलकर झेंप गये। उन्होंने काली टोपी उतारकर जेब में रख ली। चाय पीते हुए सुड़क-सुड़क की आवाज़ करने लगे।

कौल अपने दाँतों को खोलकर मुस्कराने लगा। वह देखने में प्रायः सुन्दर ही था जिसको देखकर मनोहर चौकन्ना-सा इधर-उधर गर्दन हिलाकर अपने नीचे के बड़े होंठ पर बीड़ी जमा लेता जैसे कोई फैली हथेली पर झाड़ू की सींक रख देता है। यदि माचिस कोई दे देता तो ठीक, अन्यथा वह तब तक प्रतीक्षा करता जब तक कोई माचिस न निकाले या अपनी सिगरेट निःशेष करके न फेंके। मनोहर कुछ देर बाद मुँह में लगी बुझी-बुझाई बीड़ी को होंठों के इस कोने से उस कोने तक पहुँचाता, ऊँट की तरह जीभ फिराता, फिर हँसता जैसे वह एक सत्ता की घुटन थी जो इस लंबाई में चौड़ाई मिला देने की एक कशमकश थी।

उस्ताद एक बार मनोहर की तरफ़ से हँसते, एक बार रमेश की तरफ़ से, फिर अपनी स्वाभाविक लाचार ख़ामोशी में डूब जाते और दोनों टेसुओं में मुँहज़बानी लड़ाई होने लगती। रमेश इतनी ज़ोर से हँसता कि जैगोपाल घबराकर मेज़ पर बैठ जाता और ऐसे देखता जैसे बच्चे हैं, बच्चे।

इसी समय फतहचंद साइकिल रखकर सीना निकाले आ खड़े होते। उनकी आँखों को देखकर लगता, जैसे कबूतर नशे में ऊँघ रहा हो। किन्तु इन्हें यह स्वीकार करने में सदा आपत्ति रहती थी। ऐसे मौकों पर दिल-ही-दिल वे अपनी असली और काल्पनिक प्रेमिकाओं के नाम दुहरा लेते, फिर घूरते। उनका निष्प्रभ चेहरा कुछ अजीब-सा लगता और जेंगरे की तरह होंठों पर जीभ फेरकर वह आधे समझे, आधे ना समझे-से, आँखों पर हाथ रखकर, सिर हिलाते हुए हँसते जैसे वह चोख रहे हों। इस पर वह अपनी कमानीदार भवों को चढ़ाकर ऐसे देखते जैसे माफ़ी माँग रहे हों। और फिर सन्नाटा मार जाते जैसे कछुआ गर्दन भीतर करके चुनौती देता है कि अब कर लो, क्या करते हो?

मनोहर सदा यही शिकायत किया करता कि वह बीमार है। कोई उसकी परवाह नहीं करता। माँ उसे फूटी आँखों नहीं देख सकती। जब से बीबी आई है, एक नई मुसीबत खड़ी हो गई है। क्या करूँ, क्या न करूँ? भाई साहब! जब गुर्दा ही खराब है तो कोई क्या कर सकता है। किसी को भी यकीन नहीं होता। तभी कौल मिठाई मँगाता। मनोहर कहता—मिठाई से कोई नुकसान नहीं होता।

यही था उनके जीवन का वह पहलू जो वह सब मिलकर उपजा पाते थे। सब एक दूसरे पर विश्वास करते थे, एक दूसरे पर हँसते थे। झूठे वायदे करके एक दूसरे से पैसे लेते थे।

और रेस्त्राँ चल रहा था जैसे कोई बियाबान में लुटे हुए मुसाफिरों का एक लुटा हुआ कारवाँ ठहर गया हो और वे सब उदास-से एक दूसरे पर आश्रित हों......

( )

साँझ हो गई। रेस्त्राँ में सब बातें कर रहे थे। केवल एक आदमी अनुपस्थित था जिसकी कमी सबको खटक रही थी। उसके होने से जो मस्ती उमड़ती है वह और कोई पैदा नहीं कर सकता।

जैगोपाल चुपचाप बैठा था। लोगों को उससे यही शिकायत थी

कि वह अपने को कुछ समझता था। उस्ताद कहते थे, तुम लोग समझते-असमझते तो हो नहीं। वह भी अपने ठीक ही है।

रमेश ने कहा—उस्ताद! पढ़ाई नहीं होती, क्या किया जाये?

कौल ने हँसकर कहा—बात तो यार बिलकुल ठीक है। इधर कुछ दिन से मौसम ही कुछ खराब हो गया है।

उस्ताद ने कहा—तो क्या पढ़ाई भी कोई मौसमी फल-बल है?

फतहचंद कुछ सोच रहा था। उसने कहा—आज मनोहर कहाँ गया है? रोज़ तो वह इस वक्त यहीं मिलता था।

रमेश बोल उठा—अजी, यह भी कोई पूछने की बात है? आजकल उसकी बीवी लौट आई है।

फ़तहचंद बोले—बेशक! बेशक! समझ गये! समझ गये!

जैगोपाल ख़ामोश बैठे थे। उन्होंने कहा—लेकिन वह तो बीमार है?

रमेश आदत के मुताबिक बड़ी ज़ोर से हँसा और बोला—जी!

कोई भी इस बात को नहीं समझा। इसी समय एक फौजी नये सेकेंड लेफ्टिनेंट के साथ मनोहर ने प्रवेश किया। सब लोगों ने उत्सुकतापूर्वक मुड़कर देखा। मनोहर ने कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा—बैठिए। यही हमारा रेस्त्राँ, घर, जो कुछ चाहिए, समझिए। आप तो नाम सुनकर एकदम फड़क उठे थे। कहिए, अब आपकी क्या राय है?

सेकेंड लेफ्टिनेंट बैठ गया। अभी हाल ही में कमीशन मिला था। उसमें से अकड़ की गंध निकल रही थी जिसको सूँघकर उन लोगों का जी मिचलाने लगा। फ़तहचंद ने मनोहर की ओर घूरकर देखा जैसे उस फौजी को लाकर उसने कोई घोर अपराध किया हो। मनोहर ने चुपचाप उसे चुप रहने का इशारा किया। उसने कहा—मेरे दोस्त हैं, पहले साथ पढ़ते थे, अब कमीशन ले लिया है। आपका नाम है मिस्टर कपूर और आप हैं हमारे उस्ताद, एम० ए० में पढ़ते हैं।

दोनों ने धीरज से हाथ मिलाये, कुछ ही देर में वे लोग इधर-उधर की बातें करने लगे। उस्ताद ने चाय का ऑर्डर दे दिया। सेकेंड

लेफ्टिनेंट कपूर कहने लगे—आप लोग किसी अच्छे रेस्त्राँ में क्यों नहीं बैठते? यह जगह तो काफ़ी गंदी है।

उस्ताद मन-ही-मन कुढ़ गये। उन्होंने कहा—बात यत है कि हम जो खाते-पीते हैं वह हमें कभी लगता नहीं, इसलिए हम कभी इसकी फ़िक्र भी नहीं करते कि क्या करें, क्या न करें?

कपूर हँसा। इसके बाद लोगों ने उससे फौज पर सवाल करने शुरू कर दिये और उसने झूठ बोलना शुरू कर दिया। एकाएक रमेश ने टोककर पूछा—क्यों कपूर साहब! लड़ाई के बाद आपका क्या करने का इरादा है?

सवाल बड़ा बेढंगा था। बल्कि एक तरह से बद्‌तमीज़ी थी। नये अफ़सर का चेहरा फक पड़ गया। उसने इधर-उधर देखा। रेस्त्राँ की मैली दीवारों से उसकी दृष्टि उदास होकर टकरा गई। जीवन का मोल केवल रुपया था। लड़ाई के बाद का भीषण चित्र कदाचित् उसके नयनों के सामने खेल गया।

इसी समय रेस्त्राँ का 'बॉय' चाय रख गया। वे लोग पीने लगे। रमेश का प्रश्न अब हवा में उड़ गया था।

जब वह लेफ्टिनेंट चला गया, जैगोपाल हँसा। एक-एक करके सब हँसे। उनको संतोष था कि वह लड़ाई के बाद निकाल दिया जायेगा जब कि वे पढ़-लिखकर तब तक बहुत बड़े आदमी बन जायेंगे।

फ़तहचंद ने कहा—मनोहर! तुझे हुआ क्या है? कभी तू नब्ज़ दिखाता है, कभी जिगर। आख़िर तेरा मर्ज़ क्या है?

मनोहर ने कहा—मर्ज़? मर्ज़ तो अजीब है। अगर वह समझ में आ जाये तो फिर बात ही क्या है? मगर बात तो यही है कि कोई पकड़ नहीं पाता। पारसाल राशनिंग में नौकरी की थी, तभी से तबियत ख़राब रहने लगी। इस साल सोचा था, कॉलेज में दाख़िला करा लूँ, मगर हिम्मत नहीं पड़ती। फीस कैसे देता?

जैगोपाल ने अमीरी से पूछा—तो क्या प्राइवेट बैठने का इरादा है?

'हाँ' मनोहर ने कन्धे उचकाकर कहा—और क्या?

बात आई-गई, ख़त्म हो गई, किंतु किसी को भी चैन नहीं था। जाने क्यों सबके दिल में एक बेचैनी कशमकश कर रही थी। साँझ के सूरज की छाया में जब हर पेड़ की छाया बहुत लम्बी-लम्बी लेट जाती है, तब पेड़ में से एक अजीब मर्मर निकलने लगती है। यही उनकी आशाओं का रूप था।

उस्ताद चुप बैठे रहे। कमरा फिर सन्नाटे में डूब गया। वे कभी-कभी एक दूसरे की तरफ़ देखते, फिर व्यर्थ मुस्कराते या सिगरेट के छल्ले फूँककर उन्हें देखते रहते या फिर छल्ले में से छल्ला निकालते रहते। वह सन्नाटा उनके किसी भी वार्त्तालाप से अधिक सजीव था, क्योंकि उसमें अतृप्त विषाद था, यह न आवसाद था, न हर्ष। एक चक्कर, दूसरा चक्कर, तीसरा चक्कर, एक दूसरे में से फँसता, निकलता और हाथ फैलाकर शून्य में निरुपाय-सा लय हो जाता।

(३)

उस्ताद ने आकर अपनी साइकिल रखी और भीतर घुसे। उन्हें देखकर कौल कुछ सकपका गया।

उस्ताद ने उसे तीखी दृष्टि से देखकर कहा—कहाँ जा रहे हो?

'अभी आया उस्ताद! ज़रा काम है।'

'जल्दी आ जाओगे?' उस्ताद ने बैठते हुए पूछा।

'अभी-अभी।' कहता हुआ कौल चला गया। उसके चले जाने पर उस्ताद सन्देह से इधर-उधर टहलने लगे। उन्होंने सुना बहुत कुछ था, मगर अभी किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाये थे। मुमकिन है, वैसा ही हो। यही उम्र भी है। लेकिन अपने व्यक्तिगत अनुभव के कारण वे सदैव सबको उस पथ पर न चलने की ही सलाह दिया करते थे। उसी समय उन्होंने किसी का अट्टहास सुना। वे बैठ गये और दरवाज़े की ओर उन्होंने अपनी पीठ कर ली। हँसता हुआ रमेश भीतर घुसने लगा कि रेस्तराँवाले ने उसका नाम लिया। आवाज़ सुनकर रमेश रुक गया। रेस्तराँवाले ने रूखे स्वर से कहा—बाबूजी! आज से हिसाब रुका समझो। मैं और बढ़ाना नहीं चाहता।

'क्यों ?' रमेश क्रोध और अपमान से फूल गया। ऐसा लगा जैसे वह हिचकी भरकर रो देगा।

रेस्त्राँवाला बड़बड़ाने लगा—सा'ब, कहाँ से लायें ? वैसे तो आप भी यही कहें कि गरीबों को बड़ा तकलीफ़ है। हम भी कहीं लड़ाई के काम में होते तो थैली ऊपर रुपया रोज कमा लाते। मगर अब तो बूढ़े हो गये। अपनी तगदीर ही खराब है। जैसे हो इसी पर गुजर करनी है। आप तो सब खुद समझ सकें हैं।

रमेश निरुत्तर हो गया। फ़तहचंद तब तक भीतर उस्ताद के पास जा चुका था। जैगोपाल खड़ा सुन रहा था।

रमेश ने उसकी ओर देखा। जैगोपाल ने इशारा किया जैसे वाक़ई बहुत बुरी बात है। सबके बीच में टोकना सरासर बदमाशी है। रमेश ने कहा—अच्छा ! जल्दी ही होगी।

रेस्त्राँवाले ने असंतुष्ट स्वर में कहा—अब आप ही सोच लीजिए। हमारा काम तो कहना है। वैसे तो हमने कभी हुकम-उदूली की नहीं।

रमेश चुप हो गया। उस्ताद ने उसके मुँह पर हवाइयाँ उड़ते देखकर पूछा—यह आज नये रंग कैसे ? हम तो समझे थे कि एक यह कौल ही फँसा है ! लेकिन आज तो तुम भी कुछ उड़े-उड़े से नज़र आ रहे हो ? किसी से आँख लड़ गई ?

जैगोपाल ने कहा—उस्ताद ! आज इन पर ज़रा चोट हो गई। कर्जा माँग रहा था। भला बताओ, पैसे माँगता है ? हमारे पास नहीं है तभी तो नहीं देते। वर्ना होते तो क्या न दे देते ?

सब लोग हँस दिये। अज्ञातवास के पाण्डव कभी-कभी ऐसे ही मन बहला लेते थे। किंतु रमेश ने भारी स्वर से कहा—भाई यार ! हम तो अब कल से ग़ायब।

'क्यों ? क्यों ?' उस्ताद ने कहा—ऐसी भी क्या बात है ? आज नहीं, कल की कह दो। कोई हमेशा तो तंग रहोगे नहीं। फिर आना-जाना छोड़ने पर क्यों उतारू हो ?

रमेश ने कुछ नहीं कहा। वह कुछ सोचने लगा। फिर उसने ऐसे

साँस ली जैसे कहीं कोई पार नहीं था। अंगरेज भले ही समुद्र के मालिक होंगे, वह तो किसी भी हालत में नहीं था।

एकाएक सब लोग चौंक गये। द्वार पर लुटा हुआ-सा मनोहर खड़ा था। उसके हाठों के बीच में अब भी बीड़ी काँप रही थी और सलाम-दुआ के पहले वह हाथ बढ़ाकर माचिस माँग रहा था।

उस्ताद ने ज़ोर-शोर से कहा—यार, भीतर आओ न? बाहर खड़े क्या कर रहे हो?

मनोहर आकर ग़मग़ीन-सा एक कुर्सी पर बैठ गया। सबने उत्सुकता से उसे देखा और फ़तहचंद ने पूछा—क्या हुआ यार?

'कुछ नहीं!' मनोहर ने मुस्कराकर होंठों पर जीभ फेरी। उस्ताद ने देखा और उसके लिए चाय मँगाई। चॉय फ़ौरन रख गया। मनोहर चाय पीने लगा। उस्ताद ने कहा—बताओ भी यार! आखिर हुआ क्या?

'अरे यार' मनोहर ने बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—हुआ क्या? वही हुआ जो होना था।

'यानी?'

'यार, ज़रा सिगरेट देना,' मनोहर ने मुड़कर जैगोपाल की जलती सिगरेट लेकर अपनी बीड़ी सुलगाई और धूआँ छोड़कर बोला—आज बीबी से झगड़ा हो गया।

'क्यों? क्यों?' सबने चौंककर पूछा।

'यार, एक बात हो तो कहें? रोज़-रोज़ की फर्माइशों से मैं तो तंग आ गया। इधर बीमारी बढ़ती जा रही है।'

'तो अब?'

मनोहर ने बीच में फ़तहचंद की तरफ़ देखकर कहा—यार, एक प्याला और पिलवा दे।

फ़तहचंद ने इधर-उधर देखा। मनोहर कह उठा—नहीं आप एक प्याले में ग़रीब हो जायेंगे।

फ़तहचंद को निरुत्तर होकर चाय मँगवानी पड़ी।

मनोहर ने कहा—थैंक यू पार्टनर ! आजकल में मैं अस्पताल जा रहा हूँ। पेट फूल जाता है। डॉक्टरों की विभिन्न प्रणाली है। कोई कहता है, जिगर बढ़ा है. कोई कहता है, हाज़मा ख़राब है।

'तो तुम्हें है क्या ?' कहते हुए कौल ने प्रवेश किया। वह इस समय परेशान और बदहवास-सा था। किंतु उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

'मुझे है क्या ?' मनोहर ने कहा—भूख बिलकुल नहीं लगती। यहाँ जो सात-आठ प्याले चाय पीता हूँ उसके अलावा बहुत कम खाता हूँ।

उस्ताद मुस्कराये। किंतु उन्होंने कुछ कहा नहीं।

मनोहर कहता गया—ज़रा डॉक्टरों को फ़ीस देनी थी। इसलिए किसी तरह घर से लड़-लड़ाकर पन्द्रह रुपये लाया हूँ।

रमेश ने सहसा सिर उठाकर कहा—यार, तो तुम डॉक्टरों को बाद में भी दे सकते हो। मुझे दे दो। दो-चार रोज़ बाद तुम्हारा इंतज़ाम हो जायेगा।

मनोहर एकाएक सकपका गया। फिर एकदम बोला—पार्टनर ! यह कैसे हो सकता है ? डॉक्टरों से आज वायदा कर दिया है।

रमेश चुप हो गया। मनोहर ने घिघियाते हुए कहा—पार्टनर ! तुम्हीं बताओ। मैं क्या करूँ ? तुम तो मेरी हालत जानते ही हो। क्या बताऊँ, घर से लाचार हूँ।

'तो वहाँ रहोगे कहाँ ?' जैगोपाल ने भौं तानकर पूछा।

'जेनरल वार्ड में, और कहाँ ?' मनोहर ने निर्दोष उत्तर दिया। जैगोपाल के होंठों पर व्यंग्य की साँपिन एक बार काँपी और फिर पेट में उतर गई।

मनोहर उस्ताद से एक सिगरेट माँगकर पीने लगा।

जब फतह ंद और जैगोपाल और रमेश जाने लगे, कौल भी उनके साथ बाहर चला गया। मनोहर ने जेब से दो नोट निकालकर कहा—उस्ताद ! बड़ी कठिनाई से यह रुपये लाया हूँ, भला बताओ, डॉक्टर की फ़ीस देना जरूरी है या नहीं ?

उस्ताद ने केवल सिर हिला दिया। मनोहर संतुष्ट हो गया। उसने उठकर कहा—तो शायद फिर मिलेंगे। उम्मीद है, वहाँ आओगे अस्पताल में देखने। यार, वहाँ तो मुफ्त संतरे भी मिलते हैं। आना! खिलायेंगे!

उस्ताद हँस दिये। मनोहर चला गया। कौल ने लौटकर कहा—उस्ताद! हमें क्या मालूम था कि मनोहर का डॉक्टर रेस्त्राँवाला है जिसकी फ़ीस वह बाहर चुका रहे थे। खूब झाँसा दिया अपनी माँ को। मुझे यही चीज़ नापसंद है।

वह कुर्सी पर बैठ गया। उस्ताद कुहनी मेज़ पर टेककर हथेलियों पर गालों को जमाकर उसे घूरने लगे।

जब सब चले गये, कौल ने देखा, उस्ताद उसकी ओर देख रहे थे। वह कुछ भी न बोला और चुपचाप ऊपर की तरफ़ देखता रहा। इधर कुछ दिन से वह बराबर घबराया हुआ रहता था। उसके सुन्दर मुख पर चिंता की गहरी रेखा खिंची रहती। उस्ताद ने जब सुना तब उसे दुःख-भरे गीत गाते हुए सुना। कभी वह गाता—

अब न सहारा कोई बाकी...या फिर फ़िल्म के दुःख और दर्द से भरे गाने जिनमें प्यार की तड़पन छटपटाती-सी लंबे-लंबे निःश्वास भरती रहती। कुछ देर तक सन्नाटा रहा। अंत में उस्ताद ने ही कहा—भाई, आखिर बात क्या है? कुछ हमें भी तो सुनाओ? अगर वक्त-बे-वक्त हमीं काम न आये तो फिर दोस्त किस बात के?

कौल ने आँखों को तिरछा करके कहा—अरे उस्ताद! कोई बात हो तो कहूँ, और जो कोई बात ही न हो तो?

उस्ताद हँस पड़े। बोले—अजी, यह झाँसे किसी और को देना। यहाँ ज़िंदगी ही इसमें गुज़ार दी है। न होती तो क्या यहीं पड़े मिलते? आज अपने यार-दोस्त तमाम ऊँची-ऊँची जगह लग गये हैं। शादियाँ हो गई हैं। क्याँ, अभी तक तो हमारे भी दो बच्चे होते। मगर क्या बतायें? अपनी-अपनी क़िस्मत है! लेकिन तुम्हें इस नई जवानी में क्या ऐसा सदमा पहुँचा कि ऊह-ऊह कर रहे हो?

कौल के निष्प्रभ मलिन चेहरे पर उदासी छा गई। वह एकटक उस्ताद की तरफ़ देखता रहा।

उस्ताद ने फिर हँसकर कहा—जी, मेरी उम्र तो अब सोलह बरस की नहीं रही कि आप आँखों से ही मुझे लूट जायें। आखिर मक़सद क्या है आपका? मैंने सुना है, आप इश्क में पड़ गये हैं?

कौल ने एकाएक पूछा—आपसे किसने कहा?

'अजी, हम उड़ती चिड़िया के पर गिन लें, तुम पूछ रहे हो, किसने कहा? क्यों? मिस गेरिस पर आपकी आँख नहीं लगी? मुझे पूरा-पूरा हाल मालूम है।'

हालाँ कि मालूम उन्हें कुछ न था। इतनी बड़ी बात उन्होंने सिर्फ़ अपने क़यास पर कही थी। लेकिन कौल व्याकुल हो गया। वह कहने लगा—उस्ताद! गजब हो रहा है, कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूं? साली पहले तो बड़ी हँस-हँसकर बातें करती थी, जैसे दुनिया में अगर हूँ तो मैं ही हूँ जिससे उसका दोस्ताना हो। लेकिन एक बार मैं जब घर से रुपये लेकर आया था रेस्त्राँ चुकाने, सोचा, एक साड़ी ही दे दूँ, वह दी है, तब से क़तई आँखें फेर गई है।

उस्ताद ठठाकर हँस पड़े। बोले—हम तो पहले ही कहते थे कि म्याँ, इश्क में कुछ नहीं रखा। कुछ दिन बाद सड़क पर बैठने की नौबत आ जायेगी; मगर तुम भला कब माननेवाले। तुम्हारा तो खयाल था कि कोई-न-कोई जरूर फँसेगी। और मैंने सुना है, तुम्हारी कॉलेज में हाजरी भी कुछ कम है?

'हाँ, है तो।' कौल ने अपराधी के स्वर में स्वीकार किया।

'इम्तहान में बैठ जाने देंगे?' उस्ताद ने शंकित स्वर में पूछा।

कौल ने मुस्कराकर कहा—शायद! लेकिन मुझे उम्मीद तो है।

'चलो, अच्छा है।' उस्ताद ने साँस छोड़कर कहा—हमने तो पहले ही कहा था कि इश्क करना हो तो अपने दर्जे की लड़की से इश्क करो जिसमें पढ़ाई का वक्त बरबाद न हो, उल्टे पूरी-की-पूरी हाजिरी बनी रहे।

यह कहकर उस्ताद फिर हँसे और बोले—तो यार, गम किसका

है ? वह न सही, और सही, और न सही, और सही। आज रात क्या कोई जवानी सदा के लिए छोड़ रही है तुम्हें ? कॉलेज का प्रेम क्या ? प्रेम तो कैसा भी क्या ? औरतों को तुम रहस्य-रहस्य बनाते जाओ, यह न देखो कि वह जिसे तुम अदा और लाज कहते हो वह उनकी मजबूरी और कायरपन है। लेकिन तुम क्यों मानने लगे ?

कौल ने धीरे से कहा—मगर मैं तो और ही बात से घबरा रहा हूँ ?

'वह क्या ?' उस्ताद ने मेज़ पर कुहनियाँ टेककर पूछा।

'जब से रमेश का हिसाब बहुत बढ़ गया है, इस रेस्त्राँवाले का दिमाग़ ही कुछ-का-कुछ हो गया है। हर एक पर शुबहा करता है। मुझे तीन दफ़े टोक चुका है।'

'तो यार', उस्ताद ने कहा—हिसाब तो मेरा भी बहुत चढ़ चुका है, मगर माँगता नहीं।

'आज न सही' कौल ने जेब में हाथ डालते हुए कहा—कल तुम्हारा भी नंबर आयेगा। आख़िर चुकाना तो पड़ेगा ही। मगर मैं डर रहा हूँ, कहीं घर न पहुँच जाये। पहली बार बाबूजी ने चुकाते हुए इससे कहा था कि आयंदा इसे मत देना। मगर तुम्हारे कहने से ये दे तो रहा है। अब बताओ, क्या किया जाये। मुझे तो बिलकुल चैन नहीं। मैं तो सोच रहा हूँ, घर छोड़कर भाग जाऊँ।

उस्ताद हँसे। बोले—शाबाश ! इसमें तुम्हारा और हमारा दोनों का नाम ख़ूब रोशन होगा।

'तो फिर करूँ भी क्या उस्ताद ! सिगरेट भी कम पीता हूँ। डबल-वाली तो पी नहीं जाती। पहले डेढ़वाली पीता था, अब वह दो की मिलती है। पहले जितनी चाय अब भी पीता हूँ, मगर अब दो आने का प्याला आता है, पहले एक आना लगता था। हर चीज़ मँहगी, हर चीज़ मँहगी। तुम्हीं बताओ, मैं कोई फ़िज़ूल-ख़र्ची करता हूँ ? सुननेवाले तो यही कहते हैं कि रईसी दिखाओगे तो यही होगा।'

उस्ताद सोचने लगे। कौल ने उन्हें चुप देखकर कहा—एक काम कहूँ? करोगे?

'क्या?' उस्ताद ने माथे में बल डालकर पूछा।

'मैं तुमसे कहता हूँ उस्ताद! तुम्हारे सिवा मैं किसी पर यकीन भी नहीं करता। जाने क्यों शुरू से ही मेरा विश्वास है कि इस पूरी मित्र-मण्डली में सब मुँह-देखे के यार हैं, आराम के साथी हैं।' इतना कहकर वह चुप हो गया और उसने उस्ताद की तरफ़ देखा। उस्ताद किसी पशोपेश में पड़े थे। कौल मन-ही-मन मुस्कराया।

'अगर तुम मुझे' कौल ने कहा—आज पचास रुपये दे दो तो सब काम चल जाये।

उस्ताद ने कहा—लेकिन मुझे तो फ़ीस देनी है इम्तहान की। परसों तक नहीं दी जायगी तो फिर इम्तहान नहीं दे सकूँगा। फिर माँ बीमार हैं। उनके लिए दवा भी नहीं ले गया। इसी वजह से कि अगर दवा न भी दी तो कोई बात नहीं, मगर फ़ीस तो जानी ही चाहिए। आख़िर फ़ाइनल है, अबके निकल गये तो कुछ रुकावट नहीं। वर्ना इतने दिन की पढ़ाई बेकार हो जायगी।

'यार, तुम भी ऐसी बातें कर रहे हो? तुम समझते हो, मैं तुम्हारे रुपये खा जाऊँगा?'

उस्ताद ने देखा, उसकी आँखें पनीली हो गई थीं। उन्होंने कहा—कौल! मैं तुम पर अविश्वास करता हूँ, ऐसा तुम सोचकर अपनी कमजोरी दिखा रहे हो। मगर तुम जानते हो, फ़ीस का मामला है।

'अरे तो उस्ताद! तुम समझते हो, मुझे इसकी फ़िक्र नहीं है कि तुम अगर फ़ीस नहीं दे पाओगे तो इम्तहान नहीं दे सकोगे? कैसे भी हो, परसों तक तो इंतज़ाम करना ही पड़ेगा।

उस्ताद ने अपनी जेब से नोट निकालकर गिने। कुल सत्तर थे। पचास रुपये कौल को दिये और बीस अपनी जेब में रख लिये। कौल ने गद्गद होकर उनकी तरफ़ देखा। उस्ताद का हृदय आज प्रसन्न था। मन-ही-मन वह मुस्कराये। वह दोस्त क्या जो मौके पर काम न आये!

भर्तृहरि मूर्ख था जो कहता था कि दोस्त का धनुष की तरह होना चाहिए कि मौके पर झुक जाये और चोट करे दुश्मन पर। अरे दोस्त वह जो इज्जत में ख़ाक बनकर नहीं, इन्सान बनकर रहे।

उन्होंने स्नेह से कौल की ओर देखा। कौल ने कहा—अब देखना! रुपया मेरे हाथ में देखते ही मेरी ख़ुशामद करेगा। उस्ताद मुस्करा दिये।

जैगोपाल कहने लगा—मनोहर की बीमारी सिर्फ़ एक बहाना है।

उस्ताद चौंक उठे। उन्होंने कहा—यह कैसे मालूम हुआ?

जैगोपाल की बात सुनकर फ़तहचंद ने कुर्सी आगे खिसकाई और घूरने लगा। उसकी दृष्टि में न उत्सुकता थी, न जीवन।

जैगोपाल कहता रहा—कमजोर आदमी है। नौकरी मिलती नहीं। इसलिए बीमारी की आड़ में अपनी निर्बलता को छिपाता है। अगर वह बीमार न रहे तो शायद जिंदा भी नहीं रह सकता।

और वह यह कहकर हँस पड़ा। फ़तहचंद ने कहा—कम-से-कम वहाँ अस्पताल में मुफ़्त की मिलती होगी और कोई कहने-सुननेवाला भी नहीं है।

उस्ताद हँस दिये। जैगोपाल ने फिर कहा—मैं अस्पताल गया था। मैंने देखा, वह चुपचाप पड़ा इधर-उधर आती-जाती नर्सों को अतृप्त आँखों से देख रहा था।

फ़तहचंद ने कहा—नर्सों पर नज़र पड़ी है जनाब की। बीबी आई तब से खुद तो सम्भलते नहीं, अब उधर भी? नर्सों को तो रुपये की ज़रूरत है, वर्ना हिन्दुस्तानियों को वह ज़रा कम मुँह लगाती हैं।

उस्ताद ने इधर-उधर देखा। उनका जी नहीं लगा। उन्होंने पूछा—रमेश क्यों नहीं आया?

'हिसाब जो बढ़ गया है!' और वह एक भद्दी हँसी हँसा।

'तो तुम उसे रुपये दे दो न कुछ?' उस्ताद ने कहा।

'तुम ही क्यों नहीं दे देते?' जैगोपाल ने व्यंग्य से पूछा।

'मेरे पास होते तो दे देता। कल ही फ़ीस के रुपयों में से मैंने कौल को रुपये दे दिये। वर्ना मौके पर मैं काम न आता?'

जैगोपाल चुप हो गया। वह कुछ भी निश्चय नहीं कर सका। उस्ताद उसको पैनी नज़र से काटते रहे।

फ़तहचंद ने टोककर कहा—नहीं उस्ताद! यह बात ग़लत है। मैं इसमें विश्वास नहीं करता। रुपये देना, सो भी इस तरह, मैं तो इसे ठीक नहीं समझता, न ऐसा कर सकता हूँ। तुम्हीं बताओ, आजकल कोई इतना अमीर है कि एकदम ऐसी चोट खा सकने का ख़तरा अपने ऊपर मोल ले?

उस्ताद ने सुना और समझा। वे उसकी ओर देखते रहे। फ़तहचंद ने गम्भीर होकर कहा—मान लीजिए, वह आपको रुपये नहीं देता...

'ख़ैर!' उस्ताद ने काट दिया—यह तो सोचना ही ग़लत है।

फतहचंद ने कहा—वह तो हो सकता है। मगर मैं एक बात की कहता हूँ। देखिए, आजकल ज़माना ऐसा खराब है कि यह नहीं जान सकते कि कौन कब किसके चूना दे जायगा।

उस्ताद ने कहा—भलमनसाहत भी तो कोई चीज़ होती है?

'होती होगी!' फ़तहचंद ने अविश्वास से कहा।

'हाँ' जैगोपाल ने असंदिग्ध स्वर से कहा—फ़तह की बात भी ठीक ही समझनी चाहिए। रुपये-पैसे का ऐसा हिसाब रखना ठीक नहीं होता। और भाई! बड़े आदमियों के यह खेल हम लोगों को खेलना भी नहीं चाहिए। इन बातों में एक-एक बात चुभती है, एक-एक मिनट पर मनमुटाव होता है और फिर ज़लालत की गन्ध आने लगती है।

उस्ताद चुप हो गये। वह मन-ही-मन सब कुछ समझ गये थे। यही लोग थे जिनको उन्होंने जी खोलकर चाय और सिगरेटें पिलाई थीं। तब इनके पास कोई सिद्धान्त नहीं था। आज मौके पर सब पैग म्बर बने बैठे हैं! उन्होंने कहा—ख़ैर! देखा जायेगा! लेकिन आज क ल दिखा ई नहीं दिया। पूछो तो बॉय से। आया था क्या?

जैगोपाल ने बॉय को बुलाया। उससे कहा—कौल साहब आये थे?

'जी नहीं!' बॉय ने उत्तर दिया।

'आज आये ही नही?' फ़तहचंद ने पूछा।

'जी नहीं। आज वो आये ही नहीं।' बॉय ने ऊबकर उत्तर दिया।

'अच्छा जाओ!' सुनकर वह चला गया और बाहर धूप में बैठकर कुछ गुनगुनाने लगा और कटोरदान खोलकर चने की रोटियाँ निकालकर खाने लगा। तब तक फ़तहचंद के चेहरे पर एक मुस्कान आई और ऐसे चली गई जैसे कॉलेज की चंचल लड़की जान-जानकर सिर से पल्ला गिराकर फिर ओढ़ लेती है। उसने एक बार गर्व से इधर-उधर देखा।

जैगोपाल उठ खड़ा हुआ।

फ़तह ने कहा—अच्छा, तो मैं चलूँ उस्ताद! आज ज़रा गाँव जाना चाहता हूँ। एक रिश्ते की चाची मर गई है। उसकी ज़मीन है। रिश्ते के लोग हड़प लेंगे। इसी से जाना पड़ रहा है।

जैगोपाल ने कहा—तो चलो! मैं भी ज़रा डाकख़ाने होता हुआ जाऊँगा उधर से। आज एक ख़त डाल रहा हूँ घर। जाने क्यों अबके बड़े मियाँ ने मनीआर्डर भेजने में इतनी देर कर दी?

दोनों चले गये। उस्ताद फिर भी बैठे रहे। थोड़ी देर बाद कुछ विचार आया। उठे और कौल के घर की तरफ़ चल दिये। रास्ते में ख़याल आया, कहीं ओछा न समझे कि आज नहीं देखा तो पीछे ही चले आये। सोच लिया, कहेंगे, कोई कह रहा था कि कौल बीमार हो गया है। तब तो उल्टे अहसान ही मानेगा।

दरवाज़ा खटखटाया। एक बच्चे ने निकलकर पूछा—क्या है?

'कौल हैं?' उन्होंने मुस्कराकर पूछा।

'वह तो सुबह से ही कहीं चले गये हैं।'

जाने क्यों उस्ताद को लगा कि यह जवाब बच्चे को रटा दिया गया है। कुछ नहीं कहा। बच्चा उनकी ओर बड़ी-बड़ी अबोध आँखों से देखता रहा। जब उस्ताद कौल के घर से लौटे, दिमाग़ में एक भयानक सुस्ती थी। शंका का पक्षी अपने पर फड़फड़ाने लगा था। क्या बात है? आख़िर वह गया कहाँ? पहले तो कहता था कि तुमसे मिले बिना मुझे एक क्षण चैन नहीं मिलता। कहीं इसी वजह से तो ग़ायब नहीं हो गया?

उस्ताद सुस्त-से बैठ गये। गला चटक रहा था! उन्होंने आवाज़ दी—बॉय! एक प्याला चाय!

सिर उठाकर जब उन्होंने देखा, सामने रेस्त्राँवाला खड़ा था। आज उसके मुख पर कठोरता थी। बेपानी आँखों को देखकर उन्हें उस पर गुस्सा-सा आया।

'क्या है?' उन्होंने दृढ़ता से पूछा।

'सरकार! अब तो सुनवाई हो जाये।'

'क्यों, इतनी जल्दी क्या है?'

'जल्दी!' रेस्त्राँवाला उद्दंडता से बोला—रुपया-रुपया करके हम गुजारा करते हैं और आपने कह दिया बाबूजी जल्दी! व्यंग्य उसके मुँह पर खेल गया। उस्ताद उसको देख विक्षुब्ध हो गये। इन लोगों के चेहरों पर जो यह तुलनात्मक भाव रहता है, यही उन्हें नापसंद था। जब हम लोग ही परेशान हैं तब इन लोगों का और भी बुरा होना आवश्यक है। इस समय इन लोगों में यह एक नई बात आ गई है कि अपने को हम लोगों के बराबर समझने लगे हैं।

'अच्छा, देखा जायेगा!' उन्होंने दृष्टि हटाकर कहा। रेस्त्राँवाला कुछ देर आशा में खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे चला गया।

उस्ताद ने सुना, वह बुड़बुड़ा रहा था—खाते वख़्त तो खा जायें और जब हिसाब बढ़ जाये तब हुलिया तंग है।

इच्छा हुई कि उठकर दो चाँटे मार दें, किंतु फिर दब गये। मनुष्य कितना ही ताकतवर हो, जब उसके पास पैसा न हो, वह वास्तव में बहुत निर्बल होता है। रुपये के बिना संसारी की आत्मा की सारी शक्ति खत्म हो जाती है। वह व्याकुल-सा खीझने लगता है, किंतु उस समय भी किसी को उस पर ध्यान देने की फुर्सत नहीं मिलती।

उस्ताद के भीतर अपमान का विक्षोभ धधक रहा था।

(६)

रात के दस बजे थे। उस्ताद चुपचाप अपनी भारी कुर्सी पर बैठे थे जैसे उनका सब कुछ लुट चुका था और संसार में उनका कहीं भी

कुछ शेष न था। उनसे अच्छे आज वे मजदूर थे जो रोज दो-ढाई रुपया कमाते थे। उनकी एकमात्र बूढ़ी माँ भी ज्वर से विह्वल हो, खाट पर पड़ी, घर पर कराह-कराहकर जीवन के लिए लड़ रही होंगी। आज पाँच दिन से उनको वे कोई दवा नहीं पहुँचा सके थे। क्या बुरे हैं वे दर्जी जो लड़ाई के कारण तीन-चार रुपये रोज पैदा करते थे। लड़ाई में सबने अपने-अपने घर भरे थे। एक वही थे जो कुछ भी प्राप्त नहीं कर सके। आज इनको फीस जाने का अंतिम दिन था। यूनिवर्सिटी के क्लर्क ने चार रुपये रिश्वत के वादे पर इतनी दया दिखाई थी कि यदि वे रात को भी उसके घर जाकर फ़ीस दे आयें तो कल सुबह उनका भी नाम वह फ़हरिस्त पर चढ़ाकर भेज देगा। किंतु कौल अभी तक नहीं आया था।

आज उनके पास कोई भी न था। फ़तहचंद गाँव चला गया था। जैगापाल एकदम रूखा था। रमेश ने आना छोड़ दिया था। मनोहर अस्पताल में पड़ा था। और आज अन्तिम आशा भी टूट गई थी। अब कोई राह न थी। घर में अँधेरा पड़ा होगा। मिट्टी का तेल नहीं मिलता। वह ख़ुद घर पर जौ-चने की रोटी बनाते थे, क्योंकि गेहूँ ख़रीदना उनके वश की बात न थी। अपना पुराना कोट उनके शरीर पर अब भी था। कम-से-कम वह तो अभी उन्हीं के पास था। किताबें तो वह माँगकर भी पढ़ सकते थे। लिखने के लिए काग़ज़ नहीं मिलता, न सही। पुरानी रद्दी पर लिखकर काम चला लेंगे। इतना ही क्या कम था कि वह अभी तक पढ़ रहे थे। लेकिन फ़ीस दाखिल करना आज रात को ही आवश्यक है। उसके बाद कुछ नहीं हो सकता। वह यदि आज रात तक फ़ीस नहीं पहुँचा देते हैं, तो फिर कोई चारा नहीं। यह पूरा साल बरबाद जायेगा। इतने दिन तक जो वह पढ़े हैं, व्यर्थ हो जायगा।

उस्ताद उठकर टहलने लगे। मन में विचार आया, [illegible] ही [illegible] इन आदर्शों में पड़े रहे। कम-से-कम उन्हें कौल से ऐसी आशा न थी। उसे वह सदा अपना छोटा भाई समझते आये थे। आज उसी ने ऐसा प्रहार किया कि जो पेड़ किसी तरह तूफ़ान में [illegible] सिर उठाये था उसकी जड़ें ही कट गईं ?

उस्ताद सिहर उठे। उन्होंने हाथ बाँधकर इधर-उधर देखा। सामने वही छोटा-सा दिया जल रहा था। रेस्त्राँवाला उनकी तरफ़ अब एक शंका से देखता था। उसकी दृष्टि का वह तीखापन उनमें विष की तरह जलन मचा देता। सच ही है। कब तक वह चुप रह सकेगा? उसको भी तो खर्चा चाहिए। इस गिरानी में शराफ़त का दाँव खेलना क्या उसीकी किस्मत में बदा है? उन्हें उसे अस्सी रुपये चुकाने हैं।

आकुल होकर उन्होंने ऊपर देखा। आसमान में तारे घूम रहे थे। वही तारे जिनके बारे में उन्होंने कल तक बात की थी कि मनुष्य एक दिन इतना सभ्य हो जायेगा कि वह उन तारों पर पहुँच जायेगा। लेकिन तारे बहुत दूर हैं।

मन छटपटा उठा। भाड़ में जायें तारे। आज यह पृथ्वी ही इतनी भारी हो गई है कि तारों का स्वप्न भी एक अभिशाप हो गया है। उन्होंने दृष्टि हटा ली।

किसी ने भीतर-ही-भीतर कहा—व्यर्थ की शान में क्या रखा है? क्यों न कहीं लड़ाई की क्लर्की कर लें? कम-से-कम पेट तो भरेगा? माँ की दवा-दारू तो हो सकेगी? फ़ीस तो अब नहीं जा सकती। उसकी तो उम्मीद करना बेकार है।

कल उनका नाम कालेज के रजिस्टर से कट जायेगा। आज तक वे विद्यार्थी हैं, कल वे आवारा कहलायेंगे।

उस्ताद को एक कँपकँपी-सी आई। उन्होंने बाहर झाँका। सड़क पर कुहरा छा गया था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। अँधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं देता था। वह विक्षुब्ध होकर कुर्सी पर बैठ गये और फिर सोचने लगे।

चारों तरफ़ अँधेरा-ही-अँधेरा नजर आता था। उन्हें झुकना पड़ेगा। झुकना? हिंदुस्तान में झुकता कौन नहीं? जो हज़ार-हज़ार तनख्वाह पाते हैं वे क्या सिर उठा सकते हैं? सभी अपना पेट भरने की फ़िक्र में रहते हैं। ज्यादा पैसा हुआ वही शरीफ़ कहलाने लगा। ज़माना उसकी इज्ज़त करता है। जिसके पास पैसा है वही काम-काजी है। दस आदमी

उसकी प्रशंसा करते हैं। और उनके पास वही नहीं है जिससे कोई उनकी तरफ़ देखे। उन्होंने अनेक वर्ष इस कालेज में बिताये हैं। आज जब लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे? उन्होंने सदा दूसरों को यह दिखाया है कि उनके पास धन की कोई कमी नहीं! उन्होंने ट्यूशन किये तो इस लिए कि ज़माना उन्हें खूब खर्च करने के लिए कमानेवाला समझे। पहले भाई देते थे, किंतु जब से उन्होंने ब्याह किया है, साफ़ जवाब दे दिया है कि उन्हें पढ़ना छोड़कर नौकरी करनी चाहिए। दुनिया-भर के लड़के कमाई कर रहे हैं। लड़ाई के बाद पढ़ाई-वढ़ाई देखी जायेगी। आखिर इस मँहगाई में वह अपनी गिरस्ती सँभालेंगे या ऐसे कामों में पैसा खर्च करेंगे। पढ़ाई एक ऐश है, खाना ज़रूरत है।

उस्ताद की कुछ भी समझ में नहीं आया। वह फिर उठ खड़े हुए। कहाँ हैं वे दोस्त जो उन्हें ढाढ़स बँधाते थे, कहाँ हैं वे जो उनके बोलने के पहले उनकी तरफ़ से जवाब देने को तैयार रहते थे? आज कोई कहीं नहीं है।

हवा का एक ठण्डा झोंका भीतर घुस आया। उनके पुराने कोट को भेदकर ठण्ड उनकी खाल से टकरा गई। वह काँप उठे। कॉलर बन्द कर लिया। सीने को हाथों से दबाया और फिर हाथ बाँध लिये, किंतु कँपकँपी कम नहीं हुई। जी में आया, एक गर्म-गर्म प्याला चाय का मँगाकर पियें। आदत के मुताबिक सोचते ही आर्डर देना चाहा। मगर खुला मुँह खुला-का-खुला रह गया। जैसे किसी ने पीछे से गर्दन कसकर भींच दी। जो कगारा कट चुका है उसको कौन रोक सकता है? कौन मूर्ख होगा जो भँवर में अपनी नैया डाल देगा? किस मुँह से वह आर्डर दें और वह चाय लाये। उस ज़ख़्म में चाकू घुसेड़ने से दुगनी तकलीफ़ होगी जो ठीक जिगर के ऊपर हुआ है।

चाय नहीं आई। ठण्ड बढ़ती रही। आसमान से कुहरा बरसता रहा। उस्ताद कुर्सी पर बैठे रहे।

घर जाकर भी क्या होगा? उस अँधेरे में क्या होगा जाकर? लेकिन माँ जो तड़प रही होगी, जिसने इतने दिन खून का पसीना करके उन्हें

पाला था, जिनके जीवन पर उसका दारोमदार था, जिनके भविष्य की आशा पर उसने अपना सारा ईंधन आग में डाल दिया था। और आज वह हँड़िया भी कच्ची ही निकलेगी तो उसका क्या हाल होगा? कैसे सँभालेगी अपने टुकड़े-टुकड़े होते अरमानों को वह अरक्षणीया? क्या बड़े भाई की ठोकर काफ़ी नहीं थी उसका चिर संचित दुलार चूर-चूर कर देने का?

उस्ताद मुँह छिपाकर एक बार रो-से उठे। किंतु फिर साहस करके सिर उठाया।

इसी समय उन्होंने सुना, रेस्त्राँवाले से कोई बाहर बात कर रहा था। वह सुनने लगे। ऐसा लगा जैसे किसी ने उनका नाम लिया हो। जैसे कोई उन्हीं के बारे में पूछ रहा हो। क्यों न वे स्वयं बाहर जाकर देख लें। क्या ठीक है, बात वही हो। मुमकिन है, कौल आया हो और उनके बारे में पूछ रहा हो। ऐसा न हो कि रेस्त्राँवाला इस डर से कि बैठेंगे तो फिर चाय माँगेंगे और लाचार होकर पिलानी पड़ेगी, हिसाब बढ़ेगा ही, उसे टाल दे कि भीतर कोई नहीं है। कहीं ऐसा हुआ तो उल्टे वही उन्हें कल डाँटेगा और सबके बीच में यही कहेगा कि आप कमीन तो जमाने को क़मीन समझते हैं। उन्हें मन-ही-मन इतना सोच-विचार करने पर अफ़सोस हुआ। व्यर्थ ही उन्होंने उस पर सन्देह किया। दोस्त ऐसी बातों में धोका नहीं देते।

शर्मिन्दा-से वे बाहर आये और इधर-उधर देखा। रेस्त्राँवाला से बात करनेवाला जा चुका था। अकेला बैठा वह अँगीठी पर खाँस रहा था और खाँसने के बीच-बीच में बुड़बुड़ाता जा रहा था। यह उसकी आदत थी। उस्ताद जानते थे। फिर भी एक बार विश्वास करने के लिए उन्होंने पूछा—

'क्यों जी, यहाँ कौन आया था? कौन बात कर रहा था?'

'एक आया था बाबू, चला गया।' इस टालू उत्तर को सुनकर उन्होंने फिर पूछा—अरे! कौन, कौल साहब आये थे?

रेस्त्राँवाले ने कठोर स्वर से कहा—न कौल आये, न बौल।

और उस्ताद ने उसकी धीमी होती बड़बड़ाहट भी सुनी—अजी, इन चकमों में क्या रखा है, पहले तो उड़ा दिये, अब दूसरों से माँगते फिर रहे हैं।...

उस्ताद धप से कुर्सी पर गिर गये। रेस्त्राँवाला फिर भी बड़बड़ाता रहा—और कौल ही कौन दे गये हैं। पचास से तो ऊपर हैं, यहाँ डबल तक नहीं चुकाया......परमात्मा की मर्ज़ी है...सता लो जितना सता सको......वह भी एक-एक को देखेगा......

हवा का एक झोंका दिये को बुझा गया। वह अँधेरे में रह गये।

हातिम मर गया

[एक एकांकी]

पात्र

सदाशिवसरन—आई० सी० एस

बीरूपुर के ज़मींदार

शंकर—नौकर

रफ़ीक—कोतवाल

हरीन्द्र—तहसीलदार

मीना—कामरेड

रानो—सदाशिव की भाभी की छोटी बहन।

चपरासी आदि।

[ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट सदाशिवसरन का बंगला। एक कमरा। एक द्वार, बाहर पोर्च दिखलाता है, दूसरा बाहर लटकती बेल को। दर्शकों के सामने कमरे का भीतर की ओर का कोना पड़ता है। एक बगल का दरवाज़ा है जिस पर और दो की तरह चिक नहीं पड़ी है, लेकिन एक उम्दा गहरे रंग का पर्दा है। एक तरफ़ लाइब्रेरी की किस्म की लंबी शीशे की आलमारी है जिसमें किताबें चुनी रखी हैं। बीच में शीशे-जड़ी मेज़ के चारों तरफ़ एक सैटी, दो स्टफ्ड कुर्सियाँ हैं।

कमरे में और भी ज़रूरी चीज़ें हैं। ऊनी कालीन बिछा है। एक मेज़ पर रेडियो रखा है।

सदाशिवसरन। उम्र २५ बरस। हृष्ट-पुष्ट। गोरा रंग। सुबह नौ का समय है। सिगार मुँह में दबाये एक स्टफ़्ड कुर्सी पर बैठा है। हाथ में एक बड़ी तस्वीर है जिसे वह हर कोण से उठा-उठाकर सामने की मेज़ पर रखकर देखता है, कि दर्शक भी उसे देख पाते हैं। हाथ का बना चित्र है। सदाशिव सन्तुष्ट है।]

सदाशिव—(तस्वीर देखकर बुड़बुड़ाता है) नेकी कर दरिया में डाल ! जिसका जीवन दूसरों के भले के लिए गुज़र गया, जिसने दूसरों के लिए अपनी कभी परवाह नहीं की। मौत को उसने अपने होंठों की ललाई में छिपा लिया था। उसके शरीर के एक-एक रन्ध्र से दूसरे साँस लेते थे। आज भी हातिम के यश की मीनार के सामने दुनिया के सारे महल छोटे पड़ जाते हैं। सूर्य का प्रकाश पहले उसे ही जगाता है। रुस्तम का बल उसके सामने फीका पड़ जाता है। उसने अपने लिए कुछ नहीं किया। वह रहा ही इसलिए कि दूसरे उसमें रहें। आह ! कितनी नज़ीर-भरी ज़िंदगी है इसकी ?

(रानी का प्रवेश।)

सदा०—(चौंककर) खड़ी क्यों हो ?

रानी—किसकी तस्वीर देखकर मगन हो रहे हो ?

सदा०—देखो, पहचानो तो।

(दिखाता है)

रानी—अरे, जाने क्या समझी थी ! यह तो कोई बूढ़ा है।

सदा०—अब चुप भी तो नहीं रहतीं। वर्ना फिर मैं भी......

रानी—अच्छा-अच्छा। मान गई। अब कहो कि बैठे-बैठे इतने ख़ुश क्यों हो रहे हो ?

सदा०—ख़ुश ? मैं ? नहीं तो !

रानी—तो यह क्या है ?

सदा०—ओह ये ! यही तो मैं देख रहा था। तुमने हातिम का नाम तो सुना होगा ?

रानी—नहीं, हम क्यों सुनने लगे। ज़माने-भर के अरस्तू तो एक अकेले आप ही हैं जो।

सदा०—अच्छा-अच्छा भाई, लो देखो।

रानी—(देखकर) ऐसी बहुत अच्छी तो नहीं है। क्या लिखा है ? नेकी कर और दरिया में डाल। हाँ ! (सोचकर) बुरी भी नहीं कहा जा सकता इसे।

सदा०—इसने अपनी ज़िंदगी दूसरों के लिए बिता दी।

रानी—(अप्रभावित) ताज्जुब है कि तुम यह सब भी सोच लेते हो?

सदा०—फिर बेवकूफ़ी। मैं कह रहा हूँ न कि मेरा जीजा सोशलिस्ट होकर बेवकूफ़ हो गया है। और उसकी बातें सुन-सुनकर तुम्हारी भी अक्ल उल्टी हो गई है।

रानी—(मुँह फुलाकर) जाने दीजिए। हमारी बातों में आख़िर उन्हें क्यों घसीटते हैं।

(चली जाती है, सदाशिव हँसता है।)

सदा०—अरी, सुन तो। नाराज़ क्यों होती है?

(मगर वह नहीं आती।)

सदा०—शंकर! शंकर!!

शंकर—(प्रवेश कर) हुज़ूर!

सदा०—देखो, अब वह नये रेशमी गिलाफ़ आये हैं न, उन्हें इन कुर्सियों पर बदल देना।

शंकर—अच्छा हुज़ूर।

(जाता है, चपरासी आता है।)

एक मोटर रुकने का शब्द।

चपरासी—हुज़ूर!

(सदाशिव दृष्टि उठाकर देखता है।)

चप०—बीरूपुर के ज़मींदार साहब आये हैं।

सदा०—अच्छा, यह पोर्च में उन्हीं की मोटर है?

चप०—जी हाँ।

सदा०—ले आओ।

(चपरासी जाता है। सदाशिव ऐसे बैठता है जैसे किसी काम में लगा है, ज़मींदार का प्रवेश। काली अचकन, ऊनी सफ़ेद चूड़ीदार पजामा, काली किश्तीनुमा टोपी, चमकता काला जूता। अधेड़ आदमी है।)

ज़मीं०—आदाबअर्ज़! आ सकता हूँ?

सदा०—ओ हो ! आज तो चाँद निकला है। आइए, आइए, तशरीफ़ लाइए।

(उठता है, फिर दोनों बैठते हैं।)

जमीं०—आज तो इतवार है। मैंने सोचा कि आपको शायद कुछ फ़ुर्सत होगी। और तो सब ख़ैरियत है न ?

सदा०—जनाब का इक़बाल है। कहिए, कैसे तक़लीफ़ की ?

जमी०—कुछ नहीं, जरा यों ही आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ था, सोचा था, हुज़ूर के बहुत दिनों से दर्शन नहीं हुए।

(हँसता है)

सदा०—(सिगार बढ़ाकर) लीजिए ! अबकी मैं बम्बई गया था। यह सिगार वहाँ एक नवाब साहब ने मुझे दिये थे। कहते थे, हवाना से लौटे एक फ्रांसीसी ने उन्हें तीन-तीन रुपये का एक-एक बेचा था। (जलवाता है)

जमीं०—क्या कहूँ ? सिगार तो नायाब है। मैं एक बार रंगून गया था। तब मुझे एक चीन के व्यापारी ने एक सिगार पिलाया था। वह कहता था कि पाँच-पाँच रुपये का एक-एक था। लेकिन यह उससे भी बेहतर है। आज की ख़बर सुनी आपने ?

सदा०—तारघर तो आप हैं और ख़बर मुझसे माँग रहे हैं ? आप ही की वजह से कोई सुन ली तो किस्मत को सराह लिया।

जमीं०—अजी, मैं क्या कहूँ, बड़ा भारी कमाल हो गया। सरकार के सिर से आफ़त उतर गई। डाकू पकड़ा गया। वाह ! हरीन्द्र ने कमाल कर दिखाया। पीताम्बर पकड़ा गया।

सदा०—पीताम्बर ?

जमीं०—जी हाँ। रक़म भी तो थोड़ी नहीं है। २०००० रुपया ! उफ़ ! छप्पर फाड़कर मिले हैं। रुपया आदमी से क्या नहीं कराता। कुत्ते की तरह नाक हो गई होगी सूँघते-सूँघते। मैजिस्ट्रेट साहब ! तहसीलदार मालामाल हो गया और किसलिए कि एक कीड़े को पकड़ लिया।

(सदाशिव परेशान-सा !)

सदा०—वह कीड़ा नहीं था जमींदार साहब ! वह एक बड़ी भारी चोट थी।

जमीं०—अमन हो गया साहब ! कमबख्त रहता भी कहाँ था ? किसुनपुर। कोई रहने लायक गाँव है ? एक भी तो घर ऐसा नहीं जिसमें हवा-पानी रुक सके। उस गाँव के जमींदार कभी उधर नहीं जाते। वहाँ कुम्हारों के घर रहता था। मैं तो चाहता था, हरीन्द्र को कुछ बधाई दूँ। कल शाम को रुपये लेकर ग़ायब है। तहसीलदार क्या, अब तो उसकी तरक्की जल्दी ही होगी। देखिए न ? उधर सरकार जंग में लगी है, उधर फ्रांस हार गया है, इधर ये आफ़तें हैं।

(सिगार पीने लगता है। कुछ देर दोनों चुप।)

सदा०—मैं आज बड़ी बेचैनी-सी गुज़ार रहा हूँ। जाने क्यों जी मिचला रहा है।

जमीं०—दो इलायची मुँह में डाल लीजिए। मैं जाकर बाग़ से ताज़े संतरे भिजवा दूँगा। बस, तबियत हरी हो जायगी।

(फिर कुछ देर दोनों चुप।)

जमीं०—अच्छा तो अब इजाज़त हो।

(उठता है)

सदा०—बड़ी तक़लीफ़ हुई आपको।

(उठता है)

जमी०—तक़लीफ तो आपको हुई। मुझे तो दर्शन करने ही थे। अच्छा, आदाबअर्ज़।

(हाथ मिलाकर जाता है। सदाशिव अकेला रह जाता है। कुछ देर कमरे में घूमता है। फिर उदास-सा कुर्सी पर बैठ जाता है। बाहर मोटर जाने का शब्द।)

सदा०—जमींदार साहब ! वह कीड़ा नहीं था, शेर था। वह तूफ़ान नहीं था, वह नई दुनिया के लिए होनेवाली एक कशमकश थी। तुम युगांतर से बँधे हुए हो। तुमने काहिली की नींव पर अत्याचार का

महल खड़ा किया है। मगर मुझे क्या है? मैं अब तो पार्टी का सदस्य नहीं हूँ। सदाशिव, तुम भूल रहे हो। ज़िंदगी—बेकन कहता है—मज़ा लूटने के लिए है। अपने भले के लिए कुछ बुरा नहीं है। आज मैं आइ० सी० एस० हूँ। मेरे सब कारनामों पर पर्दा पड़ गया है। इज़्ज़त, दौलत और हुकूमत मेरे क़दमों पर लोट रही हैं। पाप से डरना बेकार है सदाशिव! आदमी ही पाप और पुण्य का भेद करता है। पाप! उफ़! लेकिन (आगे बढ़कर) हातिम? तुमने ज़िंदगी क्यों बिता दी बेकार? अगर तुम अपने लिए कुछ करते तो शायद पिरैमिड जैसी कोई चीज़ बना जाते। (सिहर उठता है) हरीन्द्र! तू छूटकर कैसे निकल जायेगा? आधा मेरा है। बीस हज़ार! आधा मेरा है हरीन्द्र, आधा मेरा है। तू मेरे साथ का पढ़ा है तो क्या? हूँ तो मैं तेरा अफ़सर? मैं तेरा अफ़सर हूँ। कालेज में मैं सोशलिस्ट था, मगर तू तो तब भी टोढ़ी था। मुझे ढोंगी कहता था और आज रुपया लेकर ग़ायब है? चोर! मैं किसी भी Morality में विश्वास नहीं करता। इस छोटी-सी ज़िंदगी पर त्याग का अहसान किसलिए? साम्राज्यवाद के विशाल पहिये के नीचे मैं नहीं पिस सकता। मैं अपना व्यक्तित्व कभी भी हारने नहीं दूँगा और तुम पीताम्बर? 'सत्ता के इस युद्ध में साँस घुटाकर मर जाओगे। मैं नहीं, मैं नहीं।

(सिगार जलाता है। बैठता है, किंतु अशांत। जाने क्या उसका मन खाये जा रहा है। बाहर मोटर साइकिल रुकने का शब्द।)

चप०—(प्रवेश कर) हुजूर! कोतवाल साहब तशरीफ़ लाये हैं।

सदा०—ले आओ।

(कोतवाल का प्रवेश)

कोत०—आदाबअर्ज़ जनाब!

सदा०—आदाबअर्ज, आइए, आइए, तशरीफ़ रखिए।

(कोतवाल बैठता है।)

सदा०—आज खुश क्यों नज़र आ रहे हैं आप इस क़दर?

कोत०—क्या कहूँ मैं आपसे, वह पीताम्बर पकड़ा गया, हरीन्द्र को बीस हज़ार......

सदा०—जी हाँ, वह तो सुना। हीरन्द्र कहाँ गया? मालूम है आपको? सुना, सुबह से ग़ायब है?

कोत०—ग़ायब है? कैसे हो सकता है? आपको ग़लत ख़बर मिली है। मुजरिम बड़ा खतरनाक था। आपके तो साथ का पढ़ा है। जानते होंगे आप तो? मैंने कई क़ातिल देखे हैं, मगर ऐसा कोई नहीं।

सदा०—आपने क़ातिल नहीं देखे मिस्टर रफ़ीक। वह तो बाग़ी था।

कोत०—उसकी जेब में मीना नाम की एक लड़की के लिए लिखा ख़त था। उसमें उसने उसे ग़द्दार करार दिया है। दो साल से छिपे रहकर वह पकड़ा जाये, ताज़ुब है। एक जगह उसमें लिखा है—चुटियाबाज सोशलिस्ट की महुब्बत शायद अभी तुम्हारे दिल में गचक रही है।

सदा०—(सिहरकर) मीना का नाम लिख दिया है? मीना को पकड़ लिया या नहीं?

कोत०—अभी तो ग़ायब है वह।

सदा०—अब क्या उसे फाँसी लगेगी? सरकार ने तो उसे खूनी करार दिया है न?

कोत०—अच्छा है। शेर घास खाकर नहीं जी सकेगा।

सदा०—लेकिन कोतवाल साहब, जिंदगी बरबाद हो जायेगी। जिंदगी सबसे ज्यादा कीमती चीज है। फाँसी! खून!! (चौंककर) चपरासी!

चप०—(प्रवेश कर) हुजूर!

सदा०—मेरी तबियत कुछ ख़राब है।

चप०—हुजूर, डाक्टर?

सदा०—नहीं, नहीं, बस मैं आज खाना नहीं खाऊँगा। नहाऊँगा भी नहीं। ठंड बदन में घुसी आ रही है। तुम जाओ।

(चपरासी का प्रस्थान)

सदा०—सुबह ही से आज तबियत ख़राब-सी है मिस्टर रफ़ीक! क्या बताऊँ?

रफ़ीक—अच्छा, तो अब आप आराम करें। बैठे रहिए, बैठे रहिए, तकलीफ़ न करें। आदाबअर्ज़ !

(प्रस्थान। सदाशिव कुर्सी पर सूना-सा पड़ा रह जाता है। पोर्च में मोटरसाइकिल जाने का शब्द। फिर अचानक उसकी निगाह हातिम की तस्वीर पर पड़ती है।)

सदा०—वह पागल है जो ज़िंदगी का मोल नहीं जानता। ज़िंदी चींटी मरे हाथी से अच्छी है। मगर हातिम......

(ग़ौर से देखता है। चुप रह जाता है। सिर जैसे भनभना रहा है। उसकी चुप्पी और सूनापन जैसे समस्त वातावरण को खा जायेंगे। रेडियो को जाकर स्विच कर देता है। एक बंगाली गाना आता है। सुनता-सा रह जाता है कुछ देर गीत। फिर उठता है। आलमारी खोलकर एक किताब निकालता है। 'पाप' उसका नाम है। खोलकर बैठता है। मगर जी नहीं लगता। बन्द कर देता है। फिर खोलता है। फिर आँख गड़ाकर देखता रहता है। शून्य।)

सदा०—बाग़ी ! ख़ून ! मीना ! वह रूप की पुतली जो किसी हरम के लायक है, लेकिन आज, आज वह एक विराट् संघर्ष में भाग लेने को तैयार हो गई है। पीताम्बर पकड़ा गया है। जिसका दम था कि पार्टी अभी तक बनी हुई सबसे लोहा ले रही है, वह आज क़ैदी है ! मीना ! मीना !! मैं तुम्हें नहीं भूल सकता। मीना ! तुम मेरी हो। नहीं, नहीं, तुम मेरी नहीं रहीं। तुमने मुझे छोड़ दिया ! मैं भटक रहा हूँ।

(इधर-उधर घूमता है)

सदा०—फाँसी ! जहाँ क़ैदी की ख्वाहिशों से क़ातिल का ज़ुल्म मिल गया है वह कैसी फाँसी ? मीना ! मैं कमज़ोर नहीं हूँ। वह दिन मैं अभी भूला नहीं हूँ।

(रेडियो भरभराने लगता है। रानी का प्रवेश।)

रानी—(एकदम) भैया ! पीताम्बर पकड़ गया। हरीन्द्र को बीस हज़ार मिलेंगे। तुम्हारे यहाँ तो कब से पार्टी होगी ? मालूम है तुम्हें

सदा०—रानी ! मुझे मालूम है । (जैसे सोते-से जगा हो) मगर क्या तुम हमें हैवान समझती हो ?

रानी—(सहमकर) सरकार उससे डरती थी न ?

(सदाशिव करुण दृष्टि से देखता है । रानी जाकर रेडियो बन्द करती है ।)

रानी—हरीन्द्र के ठाट हो गये न ?

सदा०—वह कमीना है, हमेशा का ज़लील । तुम्हें नफ़रत होनी चाहिए ।

रानी—जी हाँ, होनी तो चाहिए । और हातिम हैं ? कहिए हातिम साहब ! आजकल आप होते तो जाने कितने बड़े बेवकूफ़ या पागल क़रार दिये जाते ।

(एक तीखी दृष्टि से देखकर हँसती है । सदाशिव को जैसे गिरती बर्फ़ में धकेल दिया गया ।)

रानी—(पास ले जाकर) लो भैया ! देखो न अपना साधु ! लेकिन तुम तो साधुओं से नफ़रत करते हो न ? लो ।

(तस्वीर लेता है ।)

सदा०—रानी ! तुम जाओ, मुझे अकेला रहने दो । मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं है ।

(एक द्विगुणित व्यथा से भरी हुई चली जाती है । सदाशिव कुछ सोचता है, फिर हातिम की तस्वीर फेंक देता है ।)

सदा०—हरीन्द्र ! हरीन्द्र ! मौत की रस्सी लटक रही है । इसमें कौन पहले सिर रखेगा ?

(रानी का प्रवेश ।)

रानी—भैया, मैं ज़रा बाज़ार जा रही हूँ । मोटर मँगाया है । कुछ देर में आ जाऊँगी । हो आऊँ ?

रानी—(चुप रहती है ।)

सदा०—क्या ?

सदा०—(समझकर) हो आओ रानी ! हो आओ न ? पूछना क्या है ? चाय के वक्त तक आ जाओगी न ?

रानी—हाँ-हाँ जरूर।

(जाती है। सदाशिव इधर-उधर घूमता है। बाहर मोटर जाने का शब्द।)

सदा०—वह दिन जब धड़कन-भरी मुस्कान मीना के होंठों पर लरज उठती थी, वह घड़ी जब पीताम्बर क्रोध से काँप उठता था, वह पल जब मेरे शब्दों में कल की ओर खेला करती थी, आज—आज सब पिसकर चूर हो गये हैं। सदाशिव! रोकर भी क्या होगा? निष्ठुर हो जा, निष्ठुर! निर्मम, कठोर। जिस दिल से मैंने पार्टी को ठुकराया था, नहीं मीना ने मुझे उस समय बचा दिया था। क्यों? निष्ठुर हूँ मैं, मगर फिर इतना भय क्यों? भविष्य का अन्धकार-भरा कोना! (सिहर उठता है)

(पर्दा हिलता है। मालूम देता है, द्वार के पीछे कोई है।)

सदा०—कौन है? कौन है वहाँ?

(पास जाता है। एक सिर झाँकता है, फिर एक स्त्री चुपचाप भीतर आ जाती है।)

सदा०—मीना!! तुम? यहाँ!!

मीना—न क्यों, जानती हूँ न कैसे? लेकिन तुम मुझसे 'कौन' कहोगे, इसकी मुझे उम्मीद न थी।

सदा०—बुरा मान गई? आओ, बैठो। मगर तुम इस तरह राह पर बेफिक्री से घूम रही हो?

मीना—मुझे मालूम है, मेरे नाम का वारंट निकल गया है!

(सदाशिव अवाक्। बैठती है।)

मीना—फिर भी मैं घूम रही हूँ। मैं तुम्हारे पास एक काम से आई हूँ। एक बात पूछने। बताओगे? या अफसरी की शान में तुम जिम्मेदार बनने का दावा करने लगे हो?

सदा०—मीना!

मीना—कॉमरेड सदाशिव! आज सदाशिव आई० सी० एस०! मैं तुमसे भीख माँगने नहीं आई हूँ। सिर्फ एक बात पूछनी है, सिर्फ! (उठती है। पास जाकर) बोलो, बताओगे? कुछ नहीं तो मेरी वजह

से बता दो, पीताम्बर के किसी समय दोस्त रहे होने के नाते बता दो..

सदा०—न..... । होश में आओ मीना! तुम्हें मालूम है, कहाँ बोल रही हो? क्या कह रही हो? दीवालों के भी कान होते हैं।

मीना—नहीं सदाशिव! तुम्हारे घर में किसी का डर नहीं है। डर तो इस अहाते के बाहरवालों को है। तुम तो सितारे हो, फिर आसमा का मुझे डर क्यों हो?

सदा०—तुम इतनी उत्तेजित क्यों हो?

मीना—सदाशिव! (धीमी पड़कर) पीताम्बर क़ैद में है, और मैं भी जानेवाली हूँ।

सदा०—तुम भी चली जाओगी मीना? बड़ी निष्ठुर हो तुम मीना, तुम न जाओ।

मीना—तुम जानते हो, मैं जाऊँगी।

सदा०—लेकिन पीताम्बर का एक पत्र पकड़ा गया है, उसमें उस तुम्हें ग़द्दार कहा है।

मीना—उसका विश्वास मेरे लिए तुम्हारे प्रेम से कहीं अधि मूल्यवान है।

सदा०—तब तुम ज़रूर जाओगी?

मीना—अच्छा नहीं जाती। लेकिन सरकार से छुड़ा दोगे?

सदा०—हाँ।

मीना—लेकिन माफ़ी माँगनी होगी कि आज़ादी के लिए लड़क मैंने जो ग़लती की है उसके लिए मुझे दरहा अफ़सोस है? (हँसती है वैसे ही नहीं रोक सकते?

सदा०—उफ़! ऐसी सच न कहो मीना। मेरा दिल टूट रहा है .स बड़ी उलझन में मैं अपनी सत्ता ही नहीं ढूँढ़ पाया हूँ मीना! मे .ज़्ज़त, हुकूमत, दौलत, सब एक खेल है...

मीना—बेकार परेशान होते हो। छोड़ो, फिर कोई पार्टी में जा ऊधम करो न?

(सदाशिव चुप रहता है)

मीना—(हँसकर) नौकरी छोड़ना बेवकूफ़ी जो होगी? लेकिन यह सब क्यों? मुझे तो जेल में जाना ही होगा। एक दिन मुझे तुम पर विश्वास था, तुम्हारे बाहुबल पर पार्टी को नाज था।

लेकिन वही तुम प्रसिद्धि न पा सकने के कारण इस तरफ़ खिंचे। ओहदे ने तुम्हारा लाल ख़ून को सफ़ेद कर दिया।

सदा०—तुम भूल रही हो मीना! मैं इतना नीच नहीं हूँ।

मीना—मैं भूल नहीं रही हूँ सदाशिव! तुम बुद्धिमान ज़रूर थे, लेकिन इतने नहीं कि तुम्हें ही सब कुछ मान लिया जाता। तुमने बदला हमसे नहीं लिया। किसानों और मज़दूरों से लिया है। तुमने महलों के नीचे जलती आग को धधकाया कि यह आग सब बागियों को जला दे। सदाशिव, तुम, जिसे मैंने चाँद की छाया में अपना प्यार दिया था। (रो उठती है) सदाशिव, मैं आज तक नहीं समझ पाई कि मैंने घृणा करके भी तुम्हें प्यार क्यों किया है?

(सिर उठाकर देखती है। सदाशिव उसके बालों पर हाथ फेरता है।)

सदा०—मीना, तुम नारी हो। तुम केवल उत्तेजना से वह सब करना चाहती थीं, मगर मैंने पुरुषों की तरह कठोर होकर, निर्मम होकर देखा, वह सब जवानी का ग़ुबार था।

मीना—चुप रहो। तुम कायर थे। तुममें वह महानता ही न थी कि तुम अपमान से विक्षुब्ध होते। तुमने अपमान को अभिमान समझा और सिर झुका बैठे। मैं अपने दिल को टटोलती हूँ। (आँसू बहते हैं,)

(सदाशिव उसका हाथ पकड़ लेता है।)

सदा०—मीना! मैं फिर तुम्हारा हो जाऊँगा। इस्तीफ़ा दे दूँगा। आओ, हम-तुम कहीं दूर जाकर खो जायें।

(क्षण-भर मीना तृप्त-सी खड़ी रहती है।)

सदा०—ज़िंदगी से लड़ना बेकार है मीना! आदमी सबसे ऊपर है। यह साम्राज्यवाद, समाजवाद के बन्धन धर्म, केवल नर-नारी के लिए हैं। तुम प्रेमिका हो, मैं प्रेमी, फिर इन बन्धनों को हम बीच में क्यों आने दें? बताओ! मेरे सवाल का जवाब दो। पीताम्बर को मैंने ही

पकड़वाया है। उसके ख़ून का अपराधी मैं ही हूँ। मुझे अन्दाज़ था कि वह किसुनपुर में ही होगा। कितना बड़ा पाप है मेरे सिर पर लेकिन सोचो, सरकार के लिए मेरा काम पुण्य है। प्राचीन काल होता तो राज-भक्ति के लिए मुझे इनाम मिलते। मीना! तुम्हारी आँखों का आकाश, मेरे हृदय का सागर, न दौलत, न हुकूमत, क्या होगा इन सबका? हम किस-किसका सोच करेंगे? बोलो मीना?

मीना—सदाशिव, तुमने क्या किया? पीताम्बर को गिरफ्तार करा दिया!

सदा०—तुम्हारे सामने मैं सब द्वन्द्वों से परे हूँ। जो मैंने किया वह सच कह दिया।

मीना—मुझे छोड़ दो सदाशिव!

(छोड़ता है।)

मीना—मैं जा रही हूँ सदाशिव! तुम्हारा घर भी एक जेलखाना है। थोड़ी देर पहले मुझे कोई डर न था। लेकिन अब यह दीवालें काटती-सी लग रही हैं। अलविदा सदाशिव!

सदा०—मीना, तुम जा रही हो? जाओ। मैं तुम्हें रोक नहीं सकता। लेकिन तुम मुझे दण्ड भी नहीं देना चाहतीं?

मीना—नहीं, हम व्यर्थ हिंसा नहीं करते। तुम्हें मारकर हड्डियों का भी लाभ न होगा। और जो मर गया है उसकी बुराइयां उसकी पीठ पर नहीं खोलते। मैं जा रही हूँ। भूल जाओ मुझे। विदा!

(जाती है। पर्दा हिलता रहता है। सदाशिव हतबुद्धि-सा रह जाता है। चिकवाले द्वार से एक व्यक्ति का प्रवेश।)

व्यक्ति—हुजूर!

सदा०—कौन? हरीन्द्र! शैतान!

हरीन्द्र—हुजूर माँ-बाप हैं। खाकसार सलाम बजाने आया है।

(सदाशिव प्रश्न-भरी आँखों से देखता है।)

हरीन्द्र—पीताम्बर……

सदा०—मुझे सब मालूम है। अब किसलिए आये हो?

हरीन्द्र—आपका हिस्सा देने। ये हैं दस हजार, ले लीजिए—

(नोट बढ़ाता है।)

सदा०—तुम कमीने ही नहीं, कसाई भी हो।

हरी०—सरकार अफ़सर हैं। कुछ भी कह सकते हैं। मगर आज आप मेरे साथ के वही सहपाठी होते तो मैं कुछ और अर्ज करता। लेकिन अब मुझे कुर्सी की इज्जत रखनी ही होगी।

सदा०—कहो। हरीन्द्र!

हरी०—सरकार...

सदा०—नहीं, सदाशिव कहो।

हरी०—आप मुझे कमीना-कसाई कह रहे हैं। लेकिन असल में कसाई कौन है, यह आप ही बता सकेंगे। आप कॉलेज में सोशलिस्ट थे, मैं तब भी इन बेवकूफ़ियों में नहीं पड़ता था। तब आप मुझे अंधा, काहिल और पिछड़ा हुआ कहते थे। मगर आप चाहते थे कि क्रान्ति के लिए आप न होकर, क्रान्ति आपके लिए हो। ग़रीबों का खून सिर्फ आपकी आँखों के सामने था, रगों में नहीं।

सदा०—सच है हरीन्द्र!

हरी०—आपने पार्टी को धोखा दिया था। आपने मेरी मदद से यह कुर्सी पाई है। मेरे दारोग़ा भाई ने आपकी जाँच की रिपोर्ट में आपकी झूठी तारीफ़ लिखकर आपको आई० सी० एस० बनवा दिया। आपके सारे कारनामे ढँक गये, लेकिन आपने अहसान नहीं माना। आपने पीताम्बर की छिपने की जगह बताई थी। उस दिन मुझे कितना ग़म हुआ था!

सदा०—तुमने मुझे रोका क्यों नहीं?

हरी०—आप अफ़सर थे!

सदा०—मगर पीताम्बर? उसे तो फाँसी लग जायगी?

हरी०—आपके दिल में दस हज़ार बड़ी चीज़ न होगी, लेकिन मेरे लिए वह बहुत बड़ी तक़दीर है। ऐसे न जाने कितने पीताम्बर रोज़ झेलते हैं। लीजिए ये रुपये।

सदा०—इन्हें तुम ही रख लो हरीन्द्र, मैं नहीं चाहता।

हरी०—मैं भीख और दान नहीं लेता हुजूर! मेहनत की खाता हूँ।

सदा०—यह मेहनत है?

हरी०—यह मेरा काम है। मुझे बीबी-बच्चों के लिए जीना है। आपका यह रुपया मैं पचा नहीं सकूँगा।

(मेज पर रखता है। सदाशिव सैटी पर सिर झुकाकर बैठ जाता है।)

(मोटर पोर्च में रुकने का शब्द।)

हरी०—इजाजत हो हुजूर!

सदा०—जाओ।

(हरीन्द्र का प्रस्थान)

(रानी के आने की आशा करके काँपते हाथ से नोटों की गड्डी उठाकर सदाशिव मेज की दराज में छिपा देता है।)

सदा०—(एकाएक) दस हजार!

रानी—(प्रवेश कर) भैया!

(हातिम की गिरी तस्वीर उठाकर मेज पर रखती है।)

रानी—नीचे कैसे गिरी? इसे जड़वा लें?

सदा०—(चौंककर) हातिम? रानी! उसे फिक्र न करो।

(दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं।)